Unit-III

(लघुसिद्धान्तकौमुदी अथ तिङन्तम्)

अध्याय—6

भ्वादिगण

भ्वादिगणः।

धातु से तिङ् प्रत्यय लगाकर क्रिया रूप बनते हैं। अतः क्रिया रूपों को ही तिङन्त कहते है। रूप रचना की दष्टि से क्रिया रूपों को दस वर्गों में बाँटा जाता है। एक वर्ग की धातुओं को एक स्थान पर एकत्रित किया गया जिन्हें गण कहते हैं। इस प्रकरण में प्रथम गण अर्थात् भ्वादिगण की धातुओं के रूपों का विवरण दिया जाएगा।

लट्. लिट्. लुट्. लट. लेट्. लोट्. लङ्. लिङ्. लुङ्. लङ्.   एषु प चमो

लकारश्छन्दोमात्रागोचरः।

व्याख्याः 'लट्' आदि दश लकार हैं।

एषु इतिः इन में पाँचवाँ—लेट् लकार केवल वेद का विषय है अर्थात् इसका प्रयोग वेद में ही होता है, लोक में नहीं। इन दशों में लकार होने के कारण इनको 'लकार' कहा जाता है। इनमें पहले छः टित् हैं और अन्तिम चार ङित्।

ये लकार धातुओं के आगे प्रयुक्त होते हैं। इनके द्वारा धातुवाच्य क्रिया के काल आदि का बोध होता है।

ये लकार सामान्यतः निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।

1. **लट्ः** वर्तमान काल।
2. **लिट्ः** परोक्ष अनद्यतन भूतकाल।
3. **लुट्ः** अनद्यतन भविश्यत् काल्
4. **लट्ः** सामान्य भविष्यत्।
5. **लेट्ः** शर्त लगाना और शङ्का।
6. **लोट्ः** विधि (प्रेरणा आज्ञा देना) आदि।
7. **लङ्ः** अनद्यतन भूत काल।
8. **लिङ्ः** (क) विधि आदि।
   (ख) आशीर्वाद।
9. **लुङ्ः** सामान्य भूत।
10. **लङ्ः** हेतुहेतुमदभाव के अर्थ में जब क्रिया की असिद्धि हो।

लकारों के अर्थ को स्पष्टतया समझने के लिये निम्नलिखित पदार्थों का ज्ञान होना आवश्यक है।

काल—समय को कहते हैं। क्रिया जिस समय में होती है वह क्रिया का काल कहता है।

काल तीन प्रकार का होता है।—वर्तमान, भविष्यत् और भूत।

वर्तमान काल

जो काल चल रहा है उसे वर्तमान काल कहते हैं। जिस काल में क्रिया प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है उसे वर्तमान कालिक क्रिया कहते हैं। वर्तमान कालिक क्रिया में क्रिया का प्रारम्भ होना तो पाया जाता है, पर समाप्त होना नहीं है। जैसे—'स गच्छति—वह जाता है', यहाँ गमन क्रिया का प्रारम्भ या उसका होना ज्ञात है पर समाप्त होना नहीं। अतः यह वर्तमान काल का प्रयोग है।

भविष्यत् काल

भविष्य में होने वाली क्रिया के काल को भविष्यत् काल कहते हैं। भविष्यत् काल वह है जिसमें क्रिया का प्रारम्भ होना न पाया जाय अपि तु आगे होना पाया जाय। जैसे— 'स गामिष्यति—वह जायगा।' इस वाक्य में गम (जाना) क्रिया का आगे होना पाया जाता है। इस वाक्य के द्वारा मालूम पड़ता है कि क्रिया अभी प्रारम्भ नहीं हुई। अतः यह भविष्यत् काल का प्रयोग है।

भूत काल

प्रत्यक्ष काल से पूर्व जो क्रिया समाप्त हो चुकी है, उसके काल को भूतकाल कहते हैं। अर्थात् भूतकाल वह काल है जिसमें क्रिया की समाप्ति पाई जाय अर्थात् क्रिया आरम्भ होकर समाप्त हो चुकी हो। जैसे —'सोगमत्—वह गया।' इस वाक्य में गमन—जाना—क्रिया की समाप्ति पाई जाती है। अतः वह भूतकाल का प्रयोग है।

अनद्यतन

उस काल को कहते हैं जो आज का न हो।

आजः बारह बजे रात के बाद दूसरी रात के बारह बजे तक अथवा प्रातःकाल से रात्रि की समाप्ति तक कहा जाता है। यदि इतने समय के अन्दर क्रिया हुई तो वह अद्यतन काल की कही जाती है और यदि इसके बाद हो तो अनद्यतन काल की।

भूत और भविष्यत् दो काल अनद्यतन भी होते हैं। वर्तमान में तो अद्यतन और अनद्यतन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

परोक्षः उस काल को कहते हैं जिसमें क्रिया करनेवाले का प्रत्यक्ष में होना न पाया जाय् जैसै—'युधिष्ठिरो बभूव—युधिष्ठिर हुआ'। इस वाक्य में होना क्रिया का करनेवाला युधिष्ठिर इस वाक्य के प्रयोग करनेवाले के प्रति प्रत्यक्ष नहीं वह युधिष्ठिर को देख नहीं रहा है। देवदत्तो जगाम—देवदत्त गया।

इस वाक्य में जाना क्रिया का कर्त्ता देवदत्त जब रहा था था तब इस वाक्य के प्रयोग करनेवाले ने नहीं देखा। परोक्ष का सम्बन्ध केवल भूतकाल से होता है। वर्तमान परोक्ष नहीं होता और भविष्यत् सदा परोक्ष ही रहता है। इसलिये इसका सम्बन्ध केवल भूतकाल से ही है क्योंकि भूतकाल परोक्ष और अपरोक्ष दोनों प्रकार का होता है।

इन पदाथों के ज्ञान के अनन्तर स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान काल के लिये एक लट् लकार का, भविष्यकाल के लिय लुट् और लट् इन दो लकारों का और भूत के लिये लुङ्, लङ इन तीनों का प्रयोग होता है।

लकारार्थ-कालबोधकचक

	काल		लकार	उदाहरण
1	वर्तमान		लट्	स गच्छति
2	भविष्यत्	(क) सामान्य	ल्ट्	स गमिष्यति
		(ख) अनद्यतन	लुट्	श्वो गन्ता—कल जायगा
3	भूत	(क) सामान्य	लुङ्	सोगमत्
		(ख) अनद्यतन	लङ्	सोच्छत्
		(ग) परोक्ष अन०	लिट्	स जगाम।

यदि क्रिया का अनद्यतन काल में होने का उल्लेख हो तो अनद्यतन काल का प्रयोग अवश्य होना चाहिये, अन्यथा वाक्य अशुद्ध समझा जायगा। जैसे—'श्वो गन्ता' इस वाक्य में श्वो 'पद के द्वारा स्पष्ट है कि क्रिया आज की नहीं। अतः यहाँ अनद्यतन काल के लुट् लकार का प्रयोग आवश्यक है। इस स्थान में 'लट्' का प्रयोग अशुद्ध होगा। जहाँ 'अनद्यतन' का उल्लेख स्पष्ट न हो, वहाँ 'लट्' का प्रयोग हो सकता है। 'स गमिष्यति' इस वाक्य में लट् के प्रयोग से जाना जाता है कि क्रिया भविष्यत्काल की है, आज की है कि नहीं—इसका ज्ञान इससे नहीं होता। इसी प्रकार 'वष्टिरभूत्' वष्टिरभवत्' इन वाक्यों में लकारों के कारण अर्थ भेद हैं। शेष लकार किसी काल का बोध नहीं कराते। वे क्रिया के प्रकार को बताते हैं।

लः कर्मणि च भावे चा कर्मकेभ्यः 2.4.69

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

व्याख्याः लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में हों।

इस सूत्र के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये—कर्ता, कर्म, भाव, सकर्मक और अकर्मक को परिभाषा लिखी जाती है।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि प्रत्येक धातु के दो अर्थ होते हैं फल और व्यापार। व्यापार का जो आश्रय होगा वह कर्ता और फल का आश्रय कर्म कहा जाता है।

कर्ता: धातु के द्वारा वाच्य व्यापार के आश्रय तथा व्यापार में स्वतन्त्र रूप से जो विवक्षित हो उसे कर्ता कहते हैं।

कर्म: धातुवाच्य फल के आश्रय को कर्म कहते हैं।

भाव: धातुवाच्य व्यापार को कहते हैं।

सकर्मक धातुः उन धातुओं को कहते हैं जिसके फल और व्यापार के आश्रय भिन्न[1]—भिन्न हो। जैसे—'पच्' धातु। इसका फल गलना चावलों में और पाक व्यापार देवदत्त आदि में रहता है। अतः फल और व्यापार के भिन्न भिन्न अधिकरणों में रहने में 'पच्' धातु सकर्मक है।

अकर्मक धातुः उन्हें कहते हैं जिनके फल और व्यापार एक ही आश्रय में रहते हो। जैसे— शीङ् धातु। इसका फल आराम और व्यापार लेट जाना आदि एक ही आश्रय कर्ता में रहते हैं।

यहाँ 'वाच्य' को समझ लेना अत्यावश्यक है।

वाच्यः क्रिया के प्रकार को कहते हैं जिनके द्वारा यह जानना होता है कि लकार किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह तीन प्रकार का है—1 कर्तवाच्य, 2 कर्मवाच्य, 3 भाववाच्य।

कर्तवाच्य : धातु के उस रूप को कहते हैं जिसमें लकार का संबंध कर्त्ता से हो अर्थात् लकार का अर्थ कर्ता हो।

कर्मवाच्यः धातु के उस रूप को कहते हैं जिसमें लकार का संबंध कर्म से हो अर्थात् लकार का अर्थ 'कर्म' हो।

भाववाच्यः धातु के उस रूप को कहते हैं जिसमें लकार का संबंध भाव अर्थात् क्रिया मात्र से हो अर्थात् लकार का अर्थ 'भाव' है।

क्रिया से इन तीनों प्रकारों में से कर्तवाच्य का ही अधिक प्रयोग होता है। इसीलिये गणों और प्रक्रियाओं में धातुओं के कर्तवाच्य रूप ही बताये गये हैं। भाववाच्य और कर्मवाच्य के रूप केवल 'भावकर्मप्रक्रिया' में बताये गये हैं।

इस प्रकार 'लः कर्मणि—' सूत्र धातु के तीन वाच्य कर्तवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य को बताता है। जब लकार कर्ता में आयगा तब कर्तवाच्य, जब कर्म में आयगा तब कर्मवाच्य और जब भाव में आयगा तब भाववाच्य कहा जायगा। सकर्मक धातुओं को कर्तवाच्य और कर्मवाच्य तथा अकर्मक के कर्तवाच्य और भाववाच्य होते हैं। कर्तवाच्य दोनों का होता है।

---

1. फल—व्यधिकरण—व्यापार—वाचकत्वं सकर्मकत्वम्।
2. फल—समानाधिकरण—व्यापार—वाचकत्वम् अकर्मकत्वम्
3. इन वाच्यों के कारण वाक्य रचना में बहुत भेद पड़ जाता है। उसको भी यहाँ समझ लेना आवश्यक है—

वर्तमाने लट् 3.2.123

वर्तमान क्रिया वत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याद् लस्य नेत्त्वम्। 'भू' सत्तायाम्। कर्तविवक्षायां 'भू ल्' इति स्थिते।

व्याख्याः वर्तमान काल की क्रिया में धातु से लट् लकार हो।

अटावितिः 'लट्' के अकार और टकार इत्संज्ञक है।

उच्चारणेतिः उच्चारण सामर्थ्य से लकार की इत्संज्ञा नहीं होती, अन्यथा फिर कुछ शेष न रहने से उच्चारण ही व्यर्थ हो जायगा।

भू इतिः 'भू' धातु का सत्ता होना अर्थ है।

कर्तविवक्षायामितिः इसमें 'कर्ता' की विवक्षा में कर्तवाव्य में लकार करने पर 'भू ल्' यह स्थिति हुई।

तिप्तस्झि-सिप्थस्थ-मिबवस्मस् तातांझ-थासाथांध्वम्-इड्वहिमहिङ् 3.4.99

एतेष्टादश लादेशाः स्युः।

व्याख्याः तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इड्, वहि, महिङ् ये अठारह लकारों के स्थान में आदेश हों।

इन अठारहों को 'तिङ्' कहते हैं। प्रारम्भ में 'ति' से लेकर अत्य 'ङ्' तक 'तिङ्' प्रत्याहार बनता है।

पहले नौ को छोड़कर 'त' से लेकर आगे के नौ को 'तङ्' कहते हैं। 'तङ्' भी प्रत्याहार है। 'त' से लेकर 'महिङ्' के 'ङ्' तक लिया जाता है।

लः परमैपदम् 1.4.99

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः।

व्याख्याः लकारों के स्थान में जो आदेश हों, वे परस्मैपद संज्ञा वाले हों अर्थात् उनकी परस्मैपदसंज्ञा हो।

पिछले सूत्र से पूर्वोक्त अठारह आदेशों का लकारों के स्थान में विधान किया गया है। अतः लादेश होने से इन सब की परस्मैपद संज्ञा प्राप्त हुई।

तङानावात्मनेपदम् 1.4.100

तङ्प्रर्तयाहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञापवादः।

व्याख्याः तङ्श प्रत्याहार तथा शानच् और कानच् प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा हो। पूर्वसंज्ञेति— यह पूर्व (परम्मैपद) संज्ञा का अपवाद –बाधक–है अर्थात् तङ्–त आदि नौ, शानच् और कानच् प्रत्ययों की लादेश होने पर भी पूर्व सूत्र से परस्मैपद संज्ञा नहीं होती, अपि तु विशेष विहित होने से आत्मनेपद संज्ञा होती है।

शानच् और कानच् का केवल आन बचता हैं ये दोनों प्रत्यय कत् प्रकरण में आयेंगे।

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् 1.3.12.

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेनपदं स्यात।

व्याख्याः अनुदात्तेत् (जिसका अनुदात्त अच इत् हो) और ङित् धातुओं से आत्मनेपद–तङ्, शानच् और कानच्–प्रत्यय हों।

'एध' धातु का धाकरोत्तरवर्तो अकार अनुदार्त्तते और इत्संज्ञक है। इसलिये इससे आत्मनेपद आता है। इसी प्रकार ङ् के इत् होने से 'शीङ्' धातु से भी आत्मनेपद आता है।

अनुदात्तेत् का ज्ञान 'धातुपाठ' से होगा। वहाँ से इतने धातु अनुदात्तेत् हैं— इस प्रकार उल्लेख कर अनुदात्तेत् धातुओं का पथक् परिगणन किया गया है। ङि्त का ज्ञान तो सरलता से हो जाता है, जिस धातु के साथ ङ् अनुबन्ध लगा है वह ङित् है।

स्वरितातिः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले 1.3.72

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्नेपदं स्यात् कर्तगामिनि क्रियाफले।

व्याख्याः स्वरितेत्–जिसका स्वरित अच इत् हो और ञित् धातु से आमनेपद प्रत्यय हों, यदि क्रिया का फल कर्तगामी हो अर्थात् कर्ता का मिले।

'यज' धतु का जकारोत्तवर्ती अकार स्वरित है और इत्संज्ञक हैं। इसलिये इस धातु से क्रियाफल के कर्तगामी होने पर आत्मनेपद आयगा। इसी प्रकार ञित् होने के कारण 'श्रिञ्' धातु से क्रियाफल के कर्तगामी होने पर आत्मनेपद आयगा। यह क्रियाफल कर्त 'गामी न होगा तो अग्रिम सूत्र से परस्मैपाद आयेगा।

स्वरितेत् और ञित् का ज्ञान पूर्ववत् धातुपाठ' से होगा।

इससे यह सिद्ध हुआ के स्वरितेत् और ञित् धातु उभयपद हैं अर्थात इनसे दोनों–आत्मनेपद और परस्मैपद प्रत्यय आते हैं। परन्तु यहाँ व्यवस्था की गई है कि क्रियाफल के कर्तगामी होने पर आत्मनेपद और परगामी–अर्थात् कर्ता से भिन्न में–होने पर परस्मैपद आयेगा।

सर्वप्रथम यह निश्चय कर लेना चाहिये कि क्रिया का फल क्या है? तदनन्तर इस बात पर विचार करना चाहिये कि यह फल कर्ता को मिलता है या अन्य को। यदि कर्ता को मिले तो आत्मनेपद और अन्य को मिले तो परस्मैपद का प्रयोग करना चाहिय।

'कृञ्' धातु ञित् हैं इसमें यदि 'सन्ध्या करना' यह हमें बताना हो तो सन्ध्या करने का फल है– प्रत्यवायपरिहार, पाप का अभाव। क्योंकि सन्ध्या नित्यकर्म है और नित्यकर्म का फल न करने से प्राप्त होने वाले पाप का अभाव माना जाता है। यह फल कर्ता को मिलता है। इसलिये यहाँ आत्मनेपद आयेगा, परत्मैपद् नहीं। अत एव सन्ध्या के संकल्प में 'सन्ध्यामहं करिष्ये कहना होगा 'करिष्यामि' नहीं।

क्रिया का मुख्य उद्देश्य–जिनकी सिद्धि के लिये क्रिया की जा रही हो–क्रियाफल को कहा जाता है। 'यज्ञ करना' में पुत्र प्राप्ति आदि–जिस उद्देश्य के लिये–यज्ञ क्रिया की जायगी, वह फल कहा जायगा। इसलिये यदि कर्ता स्वयं अपना यज्ञ करता होगा तो 'यज्ञमहं करिष्ये' ऐसा आत्मनेपद युक्त शब्द कहा जायगा और यदि किसी अन्य का यज्ञ करता हो–जैसे पुरोहित अपने यजमान का यज्ञ किया करता है, तब 'यज्ञमहं करिष्यामि' इस प्रकार परस्मैपद का प्रयोग किया जायगा।

यद्यपि यजमान के यज्ञ करने पर पुरोहित को भी दक्षिणा रूप फल मिलता है, तो भी आत्मनेपद नहीं होगा। क्योंकि दक्षिणा तो पारिश्रमिक–मजदूरी–के समान है, यज्ञ करने का मुख्य उद्देश्य नहीं। मुख्य उद्देश्य पुत्रप्राप्ति आदि–जिस कामना की सिद्धि के लिए यजमान ने यज्ञ रचाया हो–है और वह यजमान को ही मिलेगा जो कि यज्ञक्रिया के कर्ता पुरोहित से भिन्न है। अतः ऐसे स्थल में परगामी क्रिया–फल होने से परस्मैपद आयगा, आत्मनेपद नहीं।

इसलिये स्वरितेत् और ञित् धातुओं के प्रयोग करने में पूरी सावधानी रहनी चाहिये।

शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् 1.3.78

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्।

व्याख्याः आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से कर्ता–कर्तवाच्य में परस्मैपद हो।

उक्त तीन सूत्र आत्मनेपद और परस्मैपद के सूत्र कहे जाते हैं। ये पदव्यवस्था के समान्य–मूल सूत्र है।

उक्त तीनों सूत्रों का निष्कर्ष यह हुआ कि धातु तीन प्रकारों –कर्तवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य– में से केवल कर्तवाच्य में परमैपद आता है, भाव और कर्मवाच्य में नहीं। भाव और कर्मवाच्य में आत्मनेपद ही होगा–यह निश्चित है। कर्तवाच्य में दोनों पद आते हैं। उनकी व्यवस्था यह है कि 1 अनुदात्तेत 2 ङित् 3 स्वरितेत् कर्तगामि क्रियाफल होने पर, 4 ञित् कर्तगामि क्रिया–फल होने पर –धातुओं से आत्मनेपद आता है और शेष से परस्मैपद आयगा। पूर्वोक्त चार प्रकार के धातुओं से आत्मनेपद आयेगा।

पाणिनि ने धातुपाठ में धातुओं को विभिन्न अनुबन्धों से युक्त पढ़ा है। कुछ धातु ङित् हैं, कुछ धातु ञित्, कुछ में अनुदात्त स्वर का प्रयोग किया गया है तो कुछ में स्वरित का प्रयोग किया गया है। अनुदात्त और स्वरित की इत्संज्ञा होती हैं। ऐसी धातुओं को अनुदात्तेत् अथवा स्वरितेत् कहते हैं। आजकल धातुपाठ में अनुदात्त् स्वरित, चिह्नों का प्रयोग नहीं होता है। केवल प्रयोग से ही ज्ञात होता है कि कौन सी धातु अनुदात्तेत् है और कौन सी स्वरितेत्।

आत्मनेपद और परस्मैपद की उपर्युक्त व्यवस्था पाणिनिकाल में सम्भवतः रही हो परन्तु वास्तविक प्रयोग में पद–संबन्धी उपर्युक्त व्यवस्था पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। साहित्य में उभयपदी धातुओं का स्वेच्छा से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों में प्रयोग मिलता हैं, क्रिया का फल कर्तगामी है अथवा नहीं इस पर विशेष विचार नहीं किया जाता।

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यामोत्तमाः 1.4.101

तिङ उभयोः पदयास्त्रयस्त्रिकाः क्रमाद् एतत्संज्ञा स्युः।

(एकवचनादिसंज्ञासूत्रम्)

व्याख्याः तिङ इति—तिङ के दोनों पदों—अत्मनेपद और परस्मैपद के जो तीन तीन के समूह—हैं, उनकी क्रम से प्रथम, मध्यम, और उत्तम संज्ञा होती है।

आत्मनेपद और परस्मैपद के नौ नौ प्रत्यय हैं उन नौ प्रत्ययों के तीन वर्ग बने हुए हैं।

परस्मेपद –1 वर्ग –तिप्, तस्, झि, 2 वर्ग–सिप्, थस् थ. 3 वर्ग मिप्, वस्, मस्। आत्मनेपद— 1 वर्ग–त, आताम्, झ, 2 वर्ग–थास्, आथाम् ध्वम, 3 वर्ग–इट्, वहि, महिङ्। इस प्रकार दोनों पदों के तीन तीन वर्ग हुए। इन वर्गों की क्रम से पूर्वोक्त संज्ञायें होती हैं।

तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः 1.4.102

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङंस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादि संज्ञानि स्युः।

व्याख्याः तिङ् के इन त्रिकों–जिनकी प्रथम आदि संज्ञा की गई है–के तीन प्रत्ययों की क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा हो।

ऊपर कहे गये प्रत्येक त्रिक–तीन के वर्ग–में तीन तीन प्रत्यय हैं। उनकी क्रम से एकवचन आदि संज्ञाओं का विधान इस सूत्र में होता है। जैसे –तिप् की एकवचन, तस् की द्विवचन और झि की बहुवचन संज्ञा हुई। इन सबका निम्नलिखित चक्र से स्पष्टता के लिये निरूपण किया जाता है–

परस्मैपद			**आत्मनेपद**		
एकवचन,	**द्विवचन,**	**बहुवचन**	**एकवचन,**	**द्विवचन,**	**बहुवचन**
प्रथम–तिप्	तस्	झि	प्रथम– त	आताम्	झ
मध्यम–सिप्	थस्	थ	मध्यम–थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम–मिप्	वस्	मस्	उत्तम–इट्	वहि	महिङ्ँ

अब तक यह निर्णय किया जा चुका है कि इन तिङ् प्रत्ययों में आत्मनेपद और परस्मैपद कहाँ कहाँ आते हैं। वचनों के विषय में सुबन्त प्रकरण में कहा जा चुका है कि बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन, द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन और एकत्व की विवक्षा में एक वचन आता है। प्रथम, मध्यम और उत्तम की व्याख्या अभी नहीं की गई। वह अब अग्रिम तीनों सूत्रों से बताई जाती है–

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः 1.4.205

[1]तिङवाच्यकारकवाचिनि युष्मदि[2] प्रयुज्जयमानेप्रयुजयमाने च मध्यमः।

व्याख्याः तिङ् का वाच्य जो कारक–कर्ता या कर्म–उसी का वाचक यदि युष्मद् शब्द हो, उसके उपपद रहते हुए उसका चाहे प्रयोग हुआ हो न हुआ हो, लकार के स्थान में मध्यमसंज्ञक तिङ् प्रत्यय हों।

तिङ् प्रत्यय कर्ता और कर्म के वाचक होते हैं। कर्त्तवाच्य में कर्ता के और कर्मवाच्य में कर्म के। यदि कर्त्तवाच्य में कर्ता और कर्मवाच्य में कर्म यदि युष्मद् हो तो मध्यम पुरुष के प्रत्ययों का प्रयोग होता है। युष्मद् का प्रयोग वाक्य में साक्षात् हो अथवा वह गम्यामान हो मध्यम पुरुष के प्रत्ययों का प्रयोग होता है।

इस बात का स्पष्ट ज्ञान प्रयोग से हो सकता है। युष्मद् शब्द का प्रयोग नियमतः अपेक्षित नहीं। अतः जैसे —'त्वं भवसि'—इत्यादि प्रयोग होते हैं, उसी प्रकार युष्मद् शब्द के प्रयोग के बिना भी 'भवसि' इत्यादि मध्यम पुरुष के प्रयोग होते हैं।

अस्मद्युत्तमः 1.4.207

[3]तथाभूतेस्मदि उत्तमः।

व्याख्याः तिङ का वाच्य यदि अस्मद् शब्द हो, उसका चाहे प्रयोग हुआ हो चाहे न हुआ हो, ऐसी दशा में लकार के स्थान में उत्तमसंज्ञक तिङ् प्रत्यय हो।

शेषे प्रथमः 1.4.208

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्।

व्याख्याः मध्यम और उत्तम के विषय को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र लकार के स्थान में प्रथमसंज्ञक प्रत्यय हों।

अतः प्रथम का विषय बहुत व्यापक है।

यहाँ तक धातुओं के रूप सिद्ध करने में सहायक सामान्य नियम कहे गये। अब यहाँ से आगे रूप सिद्ध करने का पूरा प्रकार बताया जायगा। सबसे पहले 'भू' धातु के रूप सिद्ध किये जायेंगे। क्योंकि वह 'धातुपाठ' में प्रथम धातु है।

लट् लकारः प्रथम के एकवचन में लकार के सथान में 'तिप्' यह परस्मैद तिङ प्रत्यय हुआ। 'प्' की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः— सूत्र से लोप हुआं तब 'भू + ति' यह स्थिति हुई।

तिङ्-शित् सार्वधातुकम् 3.4.113

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः।

व्याख्याः 'धातोंः 3.1.91' सूत्र के अधिकार में कहे गये तिप् और शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा हो।

'भू + ति' इस पूर्वोक्त स्थिति में 'भू ति' में तिङ् की सार्वधातुकसंज्ञा हुई क्योंकि यह तिङ् है।।

कर्तरि शप् 3.1.68

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

व्याख्याः कर्ता अर्थवाले सार्वधातु के परे रहते धातु से शप् हो। कर्त्रर्थ कहने का तात्पर्य यही है कि लकार कर्ता अर्थ में आया

---

1. सूत्रस्थ 'समानाधिकरणे' पद का अर्थ वत्ति में 'तिङ्वाच्यकारकवाचिनि' किया है। सूत्र के 'समानाधिकरणे' पद का अर्थ है एक ही अधिकरण में रहनेवाला।' शब्द अर्थ में वाच्य–वाचक भाव सम्बन्ध से रहता है, इसलिए अर्थ को शब्द का अधिकरण कहा जाता है। यदि दो शब्दों का समान अर्थ हो तो उन्हें 'समानाधिकरण' कहते हैं तिङ् ओर युष्मद् समानाधिकरण तभी हो सकते हैं जब दोनों का अर्थ एक हो। यहाँ दोनों का अर्थ एक ही कारक होता है। अतः 'समानाधिकरणे'पद का 'तिङ्वाच्यकारकवाचिनि' अर्थ किया गया है।

2. 'स्थानिनि' का अर्थ है 'अप्रयुज्माने'। जिसको आदेश किया जाता है उसे 'स्थानी' कहते हैं, आदेश होने के अनन्तर स्थानी का लोप हो जाता है अर्थात् प्रयोग नहीं होता। अतः 'स्थानी' का प्रयोग न होना' इतना अर्थ हुआ। 'अपि' शब्द के द्वारा 'प्रयुज्यमाने' प्रयोग किये जाने पर इस अर्थ का भी संग्रह हो जाता है।

3. 'तथाभूते' अर्थात् पूर्व सूत्र के समान या इस सूत्र का भी यह अर्थ होगा 'तिङ्वाच्यकारकवाचिनि प्रयुज्यमानेप्रयुज्यमाने च।

हो, लकार के स्थान में आदेश आनेवाले तिबादि भी तब कर्त्रर्थ ही कहे जायेगे। अतः शप् कर्तवाच्य में ही होगा।

'शप्' प्रत्यय को 'विकरण' कहते हैं। यह धातु और तिङ् के मध्य में होता है। इसके शकार और पकार इत्संज्ञा होने पर लोप को प्राप्त हो जाते हैं, केवल 'अ' शेष रहता है।

'भू ति' में 'तिङ्' ति सार्वधातुक है। कर्ता में लकार होने से तथा उस लकार के स्थान में आदेश होने से इसका अर्थ कर्ता है। अतः इसके परे रहते 'शप्' हुआ। तब 'भू अ ति' यह स्थिति बनी। यहाँ 'यस्मात्–' सूत्र से धातु 'भू' यह अङ्ग संज्ञा है। और 'भू' यह अङ्ग इगन्त है।

(गुणविसूत्रम्)

सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84

अनयोः परयोगिन्ताङ्गस्य गुणः। अवादेशः– भवति। भवतः।

व्याख्याः सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते इगन्त अङ्ग को गुण हो।

'आर्धधातुक' संज्ञा आगे बताई जायगी।

अलोन्त्य परिभाषा के बल से अङ्ग के अन्त्य इक् को गुण होगा। 'भू अ ति' यहाँ अङ्ग के अन्त्य 'ऊ' का गुण 'ओ' हुआ।

आवदेश इतिः तब 'ओ' को 'अव्' आदेश होकर भवति रूप बना।

भवतः 'भू+तस्' इस स्थिति में 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् प्रत्यय, उसके शकार पकार की इत्संज्ञा 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः। से उकार के स्थान में गुण ओकार एकादेश और ओकार के स्थान में 'अव्' आदेश तथा सकार के स्थान में रुत्व विसर्ग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

झोन्तः 7.1.3

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः। अतो गुणे–भवन्ति। भवसि, भवथः भवथ।

व्याख्याः प्रत्यय के अवयव 'झ् को 'अन्त' आदेश हो।

भवन्ति– प्रथम के बहुवचन में 'भू+झि' इस अवस्था में पूर्ववत् शप्, गुण और अवादेश हुए। प्रत्यय के अवयव 'झ्' को 'अन्त' आदेश होकर 'भव+ अन्ति' यह दशा हुई। इसमें 'अतो गुणे' सूत्रसे 'शप्' के अकार और 'अन्ति' के अकार को पररूप एकादेश होने पर भवन्ति रूप सिद्ध हुआ।

मध्यम के तीनों वचनों के रूप इसी प्रकार सिद्ध होंगें।

भू अ सि–भो अ सि = भवसि। भू अ थस् = भो अ थस् = भवथः।

भू अ थ = भो अ थ– भवथ।

(दीर्धविधिसूत्रम्)

अतो दीर्घो यञि 7.3.101

अतोङ्गस्य दीर्घो याादो सार्वधातुके। भवामि भवावः, भवामः। स भवति, तौ भवतः ते भवन्ति। त्वं भवसि, युवां भवथः, युयं भवथ। अहं भवामि, आवां भवावः, वयं भवामः।

भवामिः उत्तम के एकवचन में 'भू मि' यहाँ शप्, गुण और अवादेश होने पर 'भव मि' इस अवस्था में या् मकार आदि 'मिप्' सार्वधातुक परे होने से अङ्ग 'भव' के अन्त्य अकार को दीर्घ आकार होकर भवामि यह सिद्ध हुआ।

शप् परे रहते केवल 'भू' की अङ्ग होगी और तिङ् परे होने पर शप् के अकार सहित 'भू अ' इसकी।

इसी प्रकार द्विवचन में भू अ वस्–भो अ वस्–भवावः। और बहुवचन में भू अ मस्–भो अ मस्–भव अमस् = भवामः रूप भी सिद्ध होंगें।

इस प्रकार लट् लकार के सम्पूर्ण रूप सिद्ध हुए। (इनको उपपद के साथ फिर मूल में दिखाया गया है। उनका अर्थ उसी क्रम से यहाँ लिखा जाता है।)

स भवतीतिः प्रथम—स भवति वह होता है, तौ भवतः— वे दो होते हैं, ते भवन्तिः—वे बहुत होते हैं।

मध्यमः त्वं भवति—तु होता है, यूवां भवथः—तुम दो होते हो, यूयं भवथ—तुम सब होते हो।

उत्तमः अहं भवामि्—मैं होता हूँ, आवां भवावः—हम दो होते हैं, वयं भवामः—हम बहुत होते हैं।

लिट् लकार—

परोक्षे लिट् 3.1.125

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

व्याख्याः अनद्यतन भूत और परोक्ष की क्रिया अर्थ में यदि धातु हो तो उससे 'लिट्' लकार हो।

इटो इतौ— 'लिट्' इकार और टकार इत्संज्ञक है। केवल लकार वचता है।

लस्येतिः उसको 'तिप्' आदि आदेश होंगे।

परस्मैपदानां णलतुसुस्-थलथुस-णल्वमाः 3.4.82

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्यु। 'भू अ' इति स्थितौ—

व्याख्याः लिट् के स्थान में आदेश हुए परस्मैपद 'तिप्' आदि नौ को क्रम से निम्नलिखित णलादि आदेश हों—

	स्थानी	आदेश	स्थानी	आदेश,	स्थानी	आदेश
प्रथम—	तिप्	णल्	तस्	अतुस्	झि	उस्
मध्यम—	सिप्	थल्	थस्	अथुस्	थ	अ
उत्तम—	मिप्	णल्	वस्	व	मस्	म

भू अ इति—'तिप्' के स्थान में 'णल् आदेश हुआ। णकार और लकार की इत्संज्ञा होकर लोप होने पर 'भू अ' यह स्थिति हुई।

भुवो वुग् लुङ्लिटोः 6.4.88

भूवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि।

व्याख्याः 'भू' धातु को 'वुक्' आगम हो, लुङ् और लिट् का अच् परे होने पर।

'वुक्' में 'उक् इत्संज्ञक है। अतः कित् होने से यह भू के आगे होगा। यहाँ लिट् का अच् अ (णल्) परे है। तब वुक् आगम होने से 'भूव् अ' ऐसी स्थिति बनी।

लिटि घातोरनभ्यासस्य 6.1.8

लिटि परे अनभ्यासधात्वययवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदि-भूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य। भूव् भूव् अ' इति स्थिते—

व्याख्याः लिट् परे रहते अभ्यास रहित अर्थात् जिसको द्वित्व न हुआ हो—धातु के अवयव प्रथम एकाच् (एक अच्वाले भाग) को द्वित्व हो, यदि धातु अजादि हो तो आदिभूत अच् से परे यदि संभव हो तो द्वितीय एकाच् को हो।

हलादि धातु चाहे एकाच् हो चाहे अनेकाच्, उसके प्रथम एकाच् को द्वित्व—होगा। पर ध्यान रहे कि यदि हलादि धातु एकाच् होगा तो उसमें धातु का अवयवत्व व्यपदेशिवद्भाव से सिद्ध करना होगा।

'चकास्' धातु हलादि अनेकाच् है इसके प्रथम एकाच् भाग 'च' को द्वित्व होगा। 'जि' धातु हलादि एकाच् है, इसके प्रथम एकाच् 'जि' को द्वित्व होगा। 'जि' में प्रथम एकाच्त्व व्यपदेशिवद्भाव से माना जायगा।

'ऊर्णु ्।' धातु अजादि अनेकाच् है, इसके द्वितीय एकाच् 'णु' को द्वित्व होगा। 'अत्' धातु अजादि एकाच् है, इसके

व्यपदेशिवद्भाव से–प्रथम एकाच, 'अत्' को हो द्वित्व होगा। एकाच् से तात्पर्य है एक अच युक्त व्यंजन समूह।

इसी व्यवस्था के अनुसार सब धातुओं को द्वित्व होगा।

'अभ्यासरहित' कहने से एकबार द्वित्व करने पर पुनः द्वित्व नहीं होगा।

भूव् इति— इस व्यवस्था के अनुसार 'भूव् अ' यहाँ प्रथम एकाच 'भूव्' को द्वित्व होकर 'भूव् भूव् अ' यह स्थिति हुई।

वकार आगम होने से 'भू' का अवयव है और 'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तदग्रहणेन गह्यन्ते' परिभाषा के बल से 'भू' से वुक् आगम सहित 'भूव्' का भी ग्रहण होता है। अतः वकार को भी द्वित्व होता है।

पूर्वोभ्यासः 6.1.4

अत्र ये द्वे विहिते, तयोः पूर्वोभ्याससंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः यहाँ जिन दो रूपों का विधान किया गया है अर्थात् जो द्वित्व करके दो रूप बनाये गये हैं, उनमें पूर्वरूप की अभ्यास संज्ञा हो।

'भूव् भूव् अ' यहाँ द्वित्व करके दो 'भूव्' बने हैं। उनमें प्रथम 'भूव्' की अभ्याससंज्ञा हुई।

हलादिः शेषः 7.4.60

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपे

व्याख्याः अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है, अन्य हलों का लोप हो जाता हैं।

हलादि धातुओं में आदि हल् रहता है, उनमें तो इस सूत्र की प्रवत्ति निर्बाध हो जाती है। परन्तु अजादि एकाच् 'अत्' आदि धातुओं में आदि हल् नहीं—वहाँ कठिनाई उपस्थित होती हैं उसके लिये 'हलादिः शेषः' सूत्र में 'अहल्' और 'आदि शेषः' ये दो योग किये जाते हें। पहले योग का अर्थ् होता है–'अभ्यास हल् रहित हो।' इस से सभी धातुओं के सभी हलों का लोप प्राप्त होता है। तब दूसरा योग नियम करता है कि –'यदि आदि में हल् हो तो वह शेष रहता है।'

इति वलोपेः 'भूव् भूव् अ' यहाँ अभ्यास में आदि हल् भकार शेष रहा और उससे भिन्न हल् 'व्' का लोप हुआ। तब 'भू भूव् अ' यह स्थिति हुई।

ह्रस्वः 7.4.59

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

व्याख्याः अभ्यास के अच् को ह्रस्व हो।

'भू भूव् अ' यहाँ अभ्यास के अच् ऊकार को इस सूत्र से ह्रस्व हो गया।

भवते (:) र् अः 7.4.73

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि।

व्याख्याः 'भू' धातु के अभ्यास के उकार को अकार हो लिट् पर होने पर।

इस सूत्र से उकार को अकार करने पर 'भू भूव् अ' यह दशा हुई।

अभ्यासे चर् च 8.4.54

अभ्यासे झलां चरः स्युः, जशश्च। झशां जशः, खयां चर इति विवेकः। बभूव, बभूवतुः, बभूवुः।

व्याख्याः अभ्यासे इति–अभ्यास में झलों के स्थान में चर् हो और जश् भी।

झशामितिः झशों को जश् और खयों को चर् हों–यह नियम है।

वर्गों के प्रथम, द्वितीय, ततीय, चतुर्थ वर्ण श, ष, स और ह ये झल् है स्थानी। आदेश हैं चर् और जश्। चर में वर्गों

के प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श ष स ह आते हैं जश् में ज ब ग ड द आते हैं। यहाँ यह प्रश्न स्वभावतः उपस्थिति होता है कि किस वर्ण के स्थान में कौन सा वर्ण आदेश हो? इसका निर्णय यह है– 'स्थानेन्तरतमः' से प्रथम वर्ण को प्रथम वर्ण, ततीय वर्ण को ततीय वर्ण तथा श ष स को श ष स ही ओदश होंगे अर्थात् अपने स्थान में अपने आप होंगे च को च, ट को ट, ज को ज इत्यादि 'प्रकृति जशां प्रकृति चरां प्रकृति चरः' इस कथन का भी यह आशय है।

द्वितीय वर्ण को प्रथम और चतुर्थ को ततीय होंगे। जैसे –छिद् धातु में छ को च होकर चिच्छेद और 'ढौकृ' में ढ को डकार हो कर डुढौके बनता हैं कवर्ग को तो 'कुहोश्चुः' सूत्र से चवर्ग हो जाता है, जैसे –गम् के गकार को जकार होकर जगाम बनता हैं हकार को भी प्रथम पूर्वोक्त सूत्र से अन्तरतम चवर्ग 'झ' होता हैं पुनः प्रकृत सूत्र से झकार को जश् जकार हो जाता हैं। जेसे– 'हन् के जघान रूप में।

प्रकृत में झल् भकार चतुर्थ वर्ण को जश् ततीय वर्ण बकार हुआ। तब बभूव रूप सिद्ध हुआ।

बभूवतुः, बभूवुः– द्विवचन और बहुवचन में भी रूपसिद्धि इसी प्रकार होगी। द्विवचन में –भू अतुस्–भूव् अतुस–भूव् भूव् अतुस–भू भूव् अतुस–भु भूव् अतुस–भ भूव अतुस् –बभूवत्ः। बहुवचन में –भू उस्–भूव् उस्, भूव् भूव् उस्–भूव् उस्–भु भूव् उस–भ भूव् उस्–बभूवुः।

लिट् च 3.4.115

लिडोदशेस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः।

व्याख्याः लिट् के स्थान में आने वाले तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा हो। यहाँ तिङ्शित–'सूत्र से प्राप्त सार्वधातुकसंज्ञा प्राप्त थी जिस का यह सूत्र बाधक है।

मध्यम के एकवचन में 'भू थ' इस स्थिति में थे की आर्धधातुकसंज्ञा हुई। तिङ् के स्थान में आदेश होने से थल् स्थानिवद्भाव से तिङ् है।

आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.1.35

वलोदेरार्धधातुकस्य 'इट्' आगमः स्यात्। बभूविथ, बभूवथुः, बभूव। बभूव, बभुविव, बभूविम।

व्याख्याः वलादि आर्धधातु को इट् आगम हो।

बभूविथ– 'भू+थ' इस स्थिति में 'थ' वलादि आर्धधातुक है। अतः उसको इट् आगम हो गया–इट् को 'इ' शेष रहता है। तब 'भू+इथ' ऐसी स्थिति बनने पर लिट् सम्बन्धो अच् परे होने से 'भुवो वुग लुङ् लिटोः, सूत्र से वुक् आगम, उसके उक् की इत्संज्ञा ओर लोप, 'भूव्' की 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' से द्वित्व, 'हलादिः शेषः' से अभ्यास के वकार का लोप, 'ह्रस्वः' से अभ्यास के दीर्घ आकर को ह्रस्व, 'भवतेर् अः' से उकार को अकार आदेश होनेपर 'अभ्यासे चर् च' से भकार को बकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

यहाँ ध्यान रहे कि इट् पहले होता है और तब वुक् आगम होता है, क्योंकि वुक् अच् परे होने पर होता है 'इट्' होने पर ही अच् परे मिलता है। तब द्वित्व आदि कार्य होते हैं।

द्विवचन में–बभूव् व' यहाँ वलादि आर्धधातुक होने से 'व' को इट् आगम होकर बभूविव रूप बना।

बहुवचन में – बभूव् म' यहाँ पूर्ववत् इट् होकर बभूविम रूप सिद्ध 'व' और 'म' में भी थल् के समान पहले 'इट्' करना चाहिये, तब अच् परे मिलने से वुक् आगम होगा और तभी द्वित्व आदि कार्य किये जायेंगे।

अनद्यतने लुट् 3.3.15

भविष्यर्तयनद्यतनेर्थे धातोर्लुट्।

व्याख्याः अनद्यतन भविष्यत् के अर्थ में धातु से 'लुट्' लकार हो।

काल को अन्वय क्रिया ही में होता है। जब क्रिया का भविष्यत्काल में होना ओर अनद्यतनत्व–आज न होना–बताना अभीष्ट हो, उस समय 'लुट्' का प्रयोग करना इससे विधान किया गया है।

स्य-तासी ल-लुटोः 3.1.33

धातोः स्य-तासी एतौ प्रत्ययौ स्तः, ललुटोः परतः। शबाद्यपवादः। 'ल' इति लङ्लटोर्ग्रहणम्।

व्याख्याः धातु से लट् और लुङ् परे होने पर स्य और लुट् पर होने पर तासि प्रत्यय होते हैं।

शबादीतिः यह विधि 'शप्' आदि की बाधक है। धातुओं से इन लकारों में अपने अपने गण के विकरण शबादि प्राप्त होते हैं। उनको बाधकर ये स्य और तास प्रत्यय होते हैं।

ल इति : सूत्र में 'ल' यह पद कहा गया है, उससे लङ् और लट दोनों का ग्रहण होता है, क्योंकि अनुबन्ध रहित 'ल' कहा गया है और परिभाषा है कि 'निरनुबन्धक ग्रहणे समान्यग्रहणम्' अर्थात्— जहाँ अनुबन्ध रहित का ग्रहण किया गया है, वहाँ सामान्य का ग्रहण होता हैं अतः यहाँ भी 'लट' इस अनुबन्धरहित पद से सामान्य लङ् और लट् का ग्रहण होता है।

अनद्यतन भविष्यत्कालिकता सूचित करने के लिये 'भू' धातु से 'लुट्' लकार आया और उसके स्थान में परस्मैपद 'तिङ्' प्रत्यय आदेश यथाक्रम से हुए। उनमें प्रथम के एक वचन में 'भू ति' इस स्थिति में 'कर्तरि शप्' से 'शप्' प्राप्त है। उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से 'तास्' हुआ। तब 'भू तास् ति' यह स्थिति बनी।

आर्धधातुकं शेषं 3.4.114

तिङ्शिद्भ्योन्यः, 'धातोः' इति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्। इट्।

व्याख्याः तिङ् और शित् प्रत्ययो से भिन्न 'धातोः' इस पचम्यन्त का उच्चारण कर विधान किये हुये प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा हो।

'तास्' प्रत्यय का विधान 'धातोः' इस पचम्यन्त पद का उच्चारण करके किया गया है, कयोंकि तास् विधायक 'स्यतासी ल–लुटोः, 3.1.33' सूत्र में 'धातोः कर्मणः समानकर्तकाद् इच्छायां वा 3.1.22 इस सूत्र से 'धातोः' पद की अनुवत्ति होती है, अतः 'तास्' की आर्धधातुक संज्ञा होती है। तास् प्रत्यय तिङ् भी नहीं और शित् भी नही। तब 'भू इतास् ति इस दशा में सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से 'ऊ' को गुण 'ओ' और 'ओ' को 'अव्' आदेश होकर 'भवितास् ति' यह स्थिति हुई।

(डारौरस्विधिसूत्रम्)

लुटः प्रथमस्य डा-रौ-रसः 2.4.85

लुटः प्रथमस्य डा, रौ, रस् एते क्रमात्स्युः। डित्वसामर्थ्याद् अभस्यापि टेर्लोपः -भविता।

व्याख्याः लुट् के प्रथम पुरुष के प्रत्ययों के क्रम से डा, रौ और रस् आदेश हो, अर्थात् तिप् को डा, तस् को रौ और झि को रस् हो।

'डा' में डकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। अतः यह 'डित्' कहा जाता है।

डित्वेतिः यद्यपि यह स्वादि कप् प्रत्ययान्तों में नहीं आता, अतः इसके परे रहते भसंज्ञा नहीं होती और अङ्ग के भसंज्ञक न होने से 'टेः' सूत्र से टि का लोप नहीं प्राप्त होता। तथापि डित् करने के बल के भसंज्ञक न होने पर भी अङ्ग की टि का लोप इसके परे रहते हो जाता है। अन्यथा कोई फल न होने से 'ड' कार की इत्संज्ञा करना व्यर्थ होगा।

भविता—'भवितास्+ति' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से 'ति' के स्थान में 'डा' आदेश हुआ। डकार की इत्संज्ञा और लोप होने पर पूर्वोक्त प्रकार से डित्व के बल से टि 'आस्' का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

तास्-अस्त्योर्लोपः 7.4.50

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे।

व्याख्याः सकारादि प्रत्यय परे होने पर तास् और अस् धातु का लोप हो।

'अलोन्त्य' परिभाषा के बल से अन्त्य अल् 'सकार' का लोप होगा।

'तास्' के सकार के लोप का उदाहरण–'भवितास् सि भवितासि' यह आगे मध्यम के एकवचन सिप् में मिलेगा।

'अस्' के सकार के लोप का उदाहरण अदादिगण में जहाँ अस् धातु आयेगी, वहाँ 'अस् सि–असि' इत्यादि रूपों में मिलेगा।

रि च 7.4.51

रादौ प्रत्यये तथा। भवितारौ, भवितारः। भवितासि, भवितास्थः, भवितास्य। भवितास्मि, भवितास्वः भवितास्मः।

व्याख्याः रकारादि प्रत्यय परे होने पर भी पूर्ववत् तास् और अस् का लोप हो'।

यहाँ भी अलोन्त्यपरिभाषा से अन्त्य सकार का ही लोप होगा।

भवितारौः–भू धातु के लुट् के प्रथम पुरुष के द्विवचन में 'भू +तस् इस स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से तास् प्रत्यय, उसकी आर्धध ातुक संज्ञा, इट् आगम, धातु को आर्धधातुक निमित्तक गुण ओ आदेश, ओ को अव् आदेश होने पर 'भवितास् तस्' ऐस स्थिति बन जाने पर तस् को रौ आदेश हुआ। तब 'रि च' इस प्रकृत सूत्र से तास् के सकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

भवितारः– लुट् के प्रथम पुरुष के बहुवचन में पूर्वोक्त प्रकार से 'भवितास्+ झि' ऐसी स्थिति बन जाने पर झि को 'रस्' आदेश हुआ और तब प्रकृत सूत्र से तास् के सकार का लोप, सकार को रुत्व विसर्ग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

भवितासिः-मध्यम के एकवचन में 'भवितास्+सि' यहाँ सकारादि 'सि' प्रत्यय परे होने से 'तास् अस्त्योर्लोपः' सूत्र से तास् के सकार का लोप होने पर रूप बना।

द्विवचन मेंः भवितास्थः। बहुवचन में–भवितास्थ।

उत्तम मेंः भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः–ये रूप हैं।

लट्कार–

लट् शेषे च 6.3.13

भविष्यदर्थाद् धातोर्लट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्याम्, असत्याम्। स्यः,इट–भविष्यति, भविष्यतः भविष्यन्ति। भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ। भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः।

व्याख्याः भविष्यत्काल की क्रिया को बताने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है चाहे क्रियार्थ विद्यमान हो अथवा न हो।

'तुमन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.1०' इस सूत्र से यहाँ 'क्रियायां क्रियार्थायाम्' की अनुवत्ति आती है।

एक क्रिया यदि दूसरी क्रिया के लिये ही की जा रही हो तो उस क्रिया को 'क्रियार्थ क्रिया कहते हैं। जैसे– 'पठितुं[1] गच्छति–पढ़ने जाता है' यहाँ जाना गमन क्रिया पठन–पढ़ना क्रिया के लिये की जा रही है, अतः गमन क्रिया क्रियार्थ क्रिया है।

प्रकृत सूत्र में कहा गया है कि क्रियार्थ क्रिया का ग्रहण किया गया हो चाहे न किया गया हो, प्रधान क्रिया वाचक धातु से 'लट्' लकार आयेगा। जैसे– क्रियार्थ क्रिया के अप्रयोग में पठिष्यति। प्रयोग में पठिष्यति–इति गच्छति क्रियार्थ क्रिया की विद्यमानता में 'इति' शब्द का प्रयोग भी करना आवश्यक होता है।

1-‚ पठितुं गच्छतिः इस वाक्य में यह भी ध्यान देने योग्य है कि पढ़ना क्रिया भविष्यति काल की है, क्योंकि पढ़ना क्रिया अभी हुई नहीं, उसके लिये अभी ‚गमनश क्रिया हो रही है।

कृदन्त में तुमुन्ण्वुलौ क्रियायाम् क्रियार्थायां 3.3.10श्इस सूत्र के द्वारा कियार्थ क्रिया की विद्यमानता में प्रधान क्रिया वाचक धातु से तुमुन् और ण्वुल प्रत्ययों का विधान किया गया है। अतः पठितुं गच्छतिश्इत्यादि प्रयोग ऐसे स्थलों में होते हैं। यहाँ पठन क्रिया भविष्यत् काल की है।

लट् लकार का प्रयोग सामान्य भविष्यत् काल की क्रिया को प्रकट करने के लिये आता है। जब भविष्यत् काल की क्रिया की अनद्यतनता–आज का न होना–प्रकट हो तब लुट् लकार का ही प्रयोग करना चाहिये, ऐसे स्थल पर 'लट्' का प्रयोग अशुद्ध होगा। परन्तु जब अनद्यतनता की प्रतीति न हो तब 'लट्' का प्रयोग करना उचित है।इसी प्रकार अद्यतनता की प्रतीति में लुट्श्का प्रयोग अशुद्ध होगा, ऐसे स्थल में लट् का ही प्रयोग करना चाहिये।

जैसे–ृ श्वो गन्तास्मिश्इस वाक्य में क्रिया की अनद्यतनता श्वःश्पद से स्पष्ट है, अतः यहाँ लुट् लकार का प्रयोग शुद्ध है, लट् का अशुद्ध। ृ अद्य गामिष्यामिश में अद्यतनता कीृ अद्यश पद से स्पष्ट प्रतीति होने सेृ लट् श का प्रयोग शुद्ध है, लुट् का अशुद्ध।ृ वष्टिर्भविष्यति श वाक्य में अद्यतनता और अनद्यतनता किसी की प्रतीति स्पष्ट नहीं होती, अतः यहाँ सामान्य होने सेृ लट् श का ही प्रयोग समुचित है।

नोटः भविष्यत् काल के विषय में यह व्यवस्था पाणिनि काल में भले ही रही हो परनतु बाद में यह व्यवस्था नहीं रही। प्रायः सभी प्रकार के भविष्यत् काल में लट् और लुट् दोनों का ही प्रयोग रहा है।

भविष्यतिृ लट् को यथाक्रम से तिबादि आदेश होंगे। तिप् करने पर सर्व प्रथम ृ स्यतासी ललुटोः श से स्य होगा। स्यश्प्रत्यय आर्धधातुकं शेषःश्से आर्धधातुकसंज्ञक है, अतः वलादि आर्धधातुक होने से उसकी आर्धधातुकस्येड् वलादेःश्से इट् आगम हो जायगा। साथ ही सार्वधातुकार्धधातुकयोःश्से ऊकार को गुण ओकार और उसकीृ अव्श आदेश होकर भविष्यतिश्ऐसी स्थिति बन जाने पर स्य के सकार के स्थान में प्रत्यय का अवयव होने से मूर्धन्य प्रकार होकर भविष्यति रूप सिद्ध होता है।

लोट लकार–

लोट् च 3.3.162

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्।

व्याख्याः विधि आदि अर्थ में धातु से लोट् लकार हो।

विधि आदि आगेृ 427 विधि–निमन्त्रणामन्त्रणा–धीष्ट–संप्रश्न–प्रार्थनेषु लिङ् 3.3.131श इस सूत्र में कहे गये हैं। ये सब छ अर्थ हैं– 1विधि 2 निमन्त्रण, 3 आमन्त्रण , 4 अधीष्ट, 5 संप्रश्न, 6 प्रार्थना।

विधि आदि इन छहों का अर्थ प्रेरणा है। परन्तु सब प्रेरणाओं में भेद है–

1. **विधिः** उस प्रेरणा को कहते हें जिसे 'आज्ञा देना' कहा जाता है। जैसे–नौकरों और मजदूरों आदि अपने से निकृष्ट–छोटों को कहा जाता है–भत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। ओदनं पच वा पचेतम् चावल पकाओ श यहाँ आज्ञा दी जा रही हैं अतः यहृ विधिश रूप प्रेरणा हैं इस प्रकार की प्रेरणा में काम करना अनिवार्य होता है, न करने से दण्ड देना पड़ता है। इसीलिये वेद आदि शास्त्रों के अहरहः सन्ध्यामुपासीतश्प्रतिदिन सन्ध्योपासना करे, इत्यादि वचनों को विधिश्कहा जाता है। इनके अनुसार काम न करने में पापश्लगता है।
2. **निमंत्रणः** उस प्रेरणा को कहते हैं जो अपने समान के बन्धु–बान्धवों दोहित्र आदि को की जाती है। इसमेंृ आज्ञाश का भाव उतना प्रबल नहीं रहता, पर इस प्रेरणा के अनुसार भी काम करना होता है, टाला नहीं जा सकता, इसे आग्रह कह सकते हैं। इसीलिए कहा गया है–निमंत्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। जैसे–भो भागिनेय! सत्यनारायणव्रतोद्यापने श्वो भाविनि त्वमागच्छ, आगच्छेः = भानजे? कल सत्यनारायणव्रत के उद्यापन में त्म आ जाना।
3. **आमन्त्रणः** उस प्रेरणा को कहते हैं जिसमें निमन्त्रण से कम बल रहता है, इस प्रेरणा से प्रेर्यमाण व्यक्ति स्वतन्त्र है उस कार्य के करने में, चाहे करे चाहे न करे। अतएव कहा गया है–आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा अर्थात् आमन्त्रण की प्रेरणा। कामचार की गुजायश रहती है, आमन्त्रित व्यक्ति जिस कार्य के लिये आमन्त्रित किया गया है, उसमें आना न आना उसकी इच्छा पर निर्भर है। आजकल के जितने निमन्त्रण पत्र छपते हैं, वे प्रायः आमन्त्रणश्होते हें। जैसे–मित्रवर, मद्विवाहमुपलक्ष्य क्रियमाणे प्रीतिभोजे भवान् आगच्छतु, आगच्छेद् वा = मित्रवर, मेरे विवाह के सम्बन्ध में पार्टी होगी उसमें तुम पधारना। इसको अनुरोध कहा जा सकता है।

4. **अधीष्टः** उस प्रेरणा को कहते हैं, जिसमें सत्कार भी हो। यह प्रायः उच्चकोटि के लोगों से सम्बन्ध रखता है। अतएव कहा गया है अधीष्टः सत्कार पूर्वको व्यापारःश्सत्कार पूर्वक किसी को कार्य में लगाना। जैसे— अध्यापक को सत्कार पूर्वक कहा जाता है क श्रीमन्, भवान् मम पुत्रमध्यापयतु अध्यापयेद् वा—श्मेरे पुत्र को पढ़ाइये।

5. **संप्रश्नः** उस प्रेरणा को कहते हैं जिसमें परामर्श लेने का भाव हो। संप्रधारणम् संप्रश्नः— निश्चय के लिये कहना। जैसे— कि भो वेदमधीयीय, उत तर्कम्—भगवन्, मैं वेद पढ़ूँ कि न्यायशास्त्र? इसमें भी प्रेरणा है, पर परामर्श अर्थात् सलाह के लिये।

6. **प्रार्थनाः** उस प्रेरणा को कहते हैं जो अपने से बड़ों से की जाती है। इसमें मांगने का भाव रहता है। अतएव प्रार्थनम्—याचना, यह कहा गया है। जेसे—पुस्तकं लभे, लभेय वा—मुझे पुस्तक मिल जाय, मुझे पुस्तक दीजिये।

   इन अर्थों में लिङ् और लोट् दोनों लकार आते हैं अत एव उदाहरणों में दोनों लकारों का उपयोग किया गया है। प्रकरणानुसार पूर्वोक्त अर्थों का निर्णय करना चाहिये कि यहाँ विधि है कि निमन्त्रण आदि। वेदादि शास्त्रों की आज्ञायें विधि हैं और उनमें अधिकतर लिङ् लकार तथा कृत्य प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

आशिषि लिङ् लोटौ 3.3.273

व्याख्याः आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् और लोट् लकार आते हैं।

आशीरिति॒ आशीःश कहते हैं अप्राप्त इष्ट वस्तु की इच्छा को। जो वस्तु हमें इष्ट हो और अप्राप्त हो उसकी इच्छा जब प्रकट करता हो तब लोट् और लिङ् लकार का प्रयोग होगा। जैसे—पुत्रं ते भवतु, भूयाद् वा—तुम्हारा पुत्र हो। इस वाक्य में पुत्रप्राप्ति की इच्छा प्रकट की गई है। वक्ता जिसे कह रहा है उसके अप्राप्त अर्थात् जो हुआ नहीं उस पुत्र के होने की अभिलाषा उसे है।

लोट् लकार में आशीर्वाद अर्थ में केवल प्रथम और मध्यम के एकवचन में॒ तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम्श सूत्र से दो रूप बनते हैं। अन्य रूप समान ही रहते हैं। परन्तु लिङ् में आशीर्वाद अर्थ में सारे रूप बिल्कुल भिन्न बनते हैं, वहाँ॒ आशीर्लिङ्श नाम से एक लकार ही और बन गया हे, जो आगे बताया जायगा।

भू धातु से विध्यादि अर्थों में लोट् लकार होने पर उसके स्थान में यथाक्रम से तिङ् आदेश होंगे। प्रथम के एक वचन में तिप्श्आने पर उसके सार्वधातुक संज्ञक होने से॒ शप्श होगा, पुनः सार्वधातुकनिमित्तक गुण होने पर आदेश होकर भवतिश्ऐसी स्थिति बिल्कुल लट् लकार के समान बनेगी।

39 एरुः 3-4-86

लोट इकारस्य उः। भवतु।

(तातङादेशविधिसूत्रम्)

व्याख्याः लोट् के इकार को उकार हो भवतु — भू धातु से लोट् के प्रथम पुरुष के एक वचन में उपर्युक्त प्रकार से॒ भवतिश बन जानेपर इस सूत्र से लोट् (स्थानिक)॒ तिश में वर्तमान इकार को उकार करने से रूप सिद्ध हुआ।

तुह्योस्तातङ् आशीष्यन्यतरस्याम् 7.1.35

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात् सर्वादेशः—भवतात्।

व्याख्याः आशीर्वाद अर्थ में लोट् के तुश्और हिश्को विकल्प से तातङ्श्आदेश हो।

तातङ्श्क में तात्श्शेष रहता है, अङ् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

भवतात्— भवतुश्में सम्पूर्ण तुश्के स्थान में प्रकृत सूत्र से तात्श्आदेश होकर भवतात् रूप सिद्ध हुआ, पक्ष में भवतु भी रहेगा।

लोटो लङ्वत् 3.4.85

लोटस्तामादयः, सलोपश्च।

व्याख्याः लोट् के स्थान में लङ् के समान 'ताम्' आदि आदेश हों ओर उसके सकार का लोप होता है।

ताम्श आदि आदेश विधायक तथा सलोप–विधायक सूत्र आगे दिये जा रहे हैं।

तस्-थस्-थ-मिपां तां -तं-तामः 3.4.101

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः। भवताम्। भवन्तु।

व्याख्याः ङित्–लङ्, लिङ्, लुङ् और लङ्–लकारों के चारतस्, थस, थ और मिप्–प्रत्ययों को क्रम से ताम्, तम्, त, और अम् आदेश हों।

क्रम सेश्कहने से तस् को ताम्, थस् को तम्, थ को त और मिप् को अम् आदेश होगा।

भवताम्– भू धातु के लोट् के द्विवचन में पूर्वोक्त प्रकार से बनी भव तस्श्इस दशा में लङ्वत् अतिदेश के बल से प्रकृत सूत्र से ृतस्श के स्थान में ताम्शआदेश होकर **भवताम्** रूप सिद्ध हुआ।

भवन्तु– झि का रूप है। लट् के झि के रूप ृभवन्तिश्के समान ही सिद्ध होता हे, केवल इकार को ृएरुःश से उकार कार्य अधिक होता है।

ध्यान रहे कि ृलकारश के स्थान में आदेश करते ही ृ एरुःश सूत्र से उकार आदेश कर देना चाहिये, क्योंकि वह निर्निमित्तक विधि होने से अन्य सब की अपेक्षा प्रबल है। साधनप्रक्रिया इसी प्रकार ठीक होगी।

सेर्ह्यपिच्च 3.4.87

लोटः सेर्हिः, सोपिच्च ।

व्याख्याः लोट् के ृ सिश को ृ हिश आदेश हो और वह अपित् हो।ृ अपित्श विधान करने से ृ सार्वधातुकमपित्श सूत्र से वह ङिद्वत् हो जाता है और तब उसके परे रहते ङित्वप्रयुक्त गुणनिषेध आदि कार्य होते हैं। जैसे–ृ स्तुहिश में गुण नहीं हुआ यह ृ स्तुतिश अर्थवाले ृ स्तुश धातु का रूप है।

भव, भवतात्– मध्यम के एकवचन में यहाँ ृ सिश को ृ हिश आदेश हुआ। शेष कार्य शबादि लट् के समान होकर,ृ भव–हिश यह स्थिति बनी। इस में आशीर्वाद अर्थ में ृ हिश के स्थान में ृ तातङ्श आदेश होकर भवतात् रूप बन गया।

तातङ् के अभाव पक्ष में भव हि इस दशा में–

अतो हेः 6.4.105

अतः परस्य हेर्लुक्। भव, भवतात्। भवतम, भवत।

व्याख्याः अदन्त अङ से परे ृहिश का लोप हो।

अदन्त अङ्ग भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गणों में मिलता है।

इसलिये इन गणों की धातुओं से परे हिश्का लोप इस सूत्र से हो जाता है।

यदि हिश्का लोप हो जाता है तो फिर उसके विधान का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न का उत्तर है–इन चार गणों को छोड़कर शेष गणों के रूप, जिन में अङ्गअदन्त नहीं मिलता, हि विधान के प्रयोजन हैं, वहाँ ृहिश्रहता है, जैसे–अद्धि, जहि, देहि इत्यादि।

भव हिश्में अदन्त अङ्गभवश से परे हि का लोप हुआ तो भव रूप बना। तातङ् पक्ष में–भवतात्।

थस् को तम्शआदेश होने से भवतम् और थश्को तश्आदेश होने से भवत रूप बनते हैं।

मेर्नि 3.4.89

लोटो मेर्निः स्यात्।

व्याख्याः लोट् के ृ मिश को नि आदेश हो।

लोट् के उत्तम के एकवचन में 'मिप्'श्होने पर 'मि'श्को 'नि'श्हो गया। शबादि कार्य भी पूर्ववत् होंगे।

आङ् उत्तमस्य पिच्च 3.4.91

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च ।भवानि। हिन्योरुत्वं न, इत्वोच्चारणसामर्थ्यात्।

व्याख्याः लोट् के उत्तम पुरुष के प्रत्ययों को आट् आगम हो और वह पित् हो।

आट्श के टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। अतः टित् होने से प्रत्यय का आदि अवयव होता है।‚ पित्श होने से गुण आदि होने में बाधा नहीं पहुँचती।

भवानि— आट्श होने पर भव आनिश्यह स्थिति बनती है, यहाँ सवर्ण दीर्घ करने पर भवानि रूप सिद्ध होता है।

हिन्योरिति—‚ हिश ओर निश्के इकार को एरुःश्सूत्र से उकार नहीं होता क्योंकि इनमें इकार का उच्चारण व्यर्थ हो जायगा। यदि उकार ही करना होता तो‚ हुश और‚ नुश आदेश विधान किये जा सकते थे। अतः‚ भवानिश में इकार को उकार नहीं हुआ।

47 ते प्राग् घातोः 1.4.8०

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

व्याख्याः गति और उपसर्ग संज्ञावाले प्र आदि शब्दों का धातु से पहले ही प्रयोग करना चाहिये।

जैसे—**प्रभवति, पराभवति, अनुभवति** इत्यादि। इन प्रयोगों मे प्र परा और अनु उपसर्ग धातु से पहले प्रयुक्त हुए हैं।

आनि लोट् 8.4.16

उपसर्गस्थाद् निमित्तात् परस्य लोडादेशस्य‚ आनिश इस्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि।

व्याख्याः उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे लोट् के स्थान में हुए 2आदेश‚ आनिश के नकार को णकार हो।

प्रभवाणि—प्रभवानिश यहाँ णत्व का निमित्त रकार‚ प्रश उपसर्ग में है। उस से पर‚ आनिश के नकार को णकार होकर प्रभवाणि रूप बना।

यहाँ अखण्ड पद न होने से‚ अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि श से णत्व प्राप्त नहीं थां अतः यह सूत्र बनाना पड़ा।‚ प्रश और भवानिश इन दो पदों के मिलने से यह पद बना है। अतः यह समानपद—अखण्ड पद नहीं है।

वा. दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः। दुःस्थितिः। दुर्भवानि।

व्याख्याः दुर्श को षत्व और णत्व के विषय में उपसर्ग का निषेध कहना चाहिये अर्थात् षत्व और णत्व करना हो तो‚ दुर्श को उपसर्ग नहीं माना जाता।

उपसर्ग न होने से‚ दुर्श से परे धातु को षत्व या णत्व कार्य— जो उपसर्ग मानकर प्राप्त हों—वे नहीं होने पाते।

दुःस्थितः यहाँ ‚ दुर्श उपसर्ग से परे ‚ स्थाश के सकार को ‚ उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसे—धसिचसजस्बजाम् श इस सूत्र से षत्व प्राप्त है। उपसर्गत्व का निषेध होने से नहीं होता।

दुर्भवानिः यहाँ‚ आनि लोट्श सूत्र से‚ दुर्श उपसर्ग में निमित्त रकार की स्थिति होने से उससे परे‚ आनिश के नकार को णत्व प्राप्त है। परन्तु उपसर्गत्व के निषेध होने से नहीं होता।

जब उपसर्ग संज्ञा का निषेध हो जाने से‚ दुर्श उपसर्ग ही नहीं है। फिर उपसर्गसंज्ञानिमित्तक कार्य उसके द्वारा कैसे हो सकते हैं?

वा. अन्तः शब्दस्याङ्—विधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम। अन्तर्भवाणि।

व्याख्याः अन्तर्श शब्द को अङ्, किविधि और णत्व के विषय में‚ उपसर्गश कहना चाहिये अर्थात् इसकी उपसर्ग संज्ञा होती है।

अन्तरश्शब्द प्रादियों में नहीं है, अतः इसकी उपसर्ग संज्ञा उपसर्गाः क्रियायोगेश से प्राप्त नहीं। उपसर्ग संज्ञा होने से 'अन्तर' के द्वारा णत्व और अङ् प्रत्यय आदि कार्य होंगे।

अन्तर्भवाणि यहाँ अन्तर्शब्द की प्रकृत वार्तिक से उपसर्ग संज्ञा होने पर उस में स्थित रकार निमित्त से परे आनिश्के नकारश्से णत्व हुआ।

अङ्श का उदाहरण—आतश्चोपसर्गेश सूत्र से उपसर्ग अन्तर्श्उपपद रहते धाश्धातु से अङ्श्प्रत्यय होकर अन्तर्धा रूप सिद्ध होता है।

किश्का उदाहरण—उपसर्गे वधोः किःश प्रत्यय होकर अन्तर्धिः रूप बनता हैः॰ किश में ककार इत् है। अतः कित् परे होने से॰ आतो लोप इटि चश्सूत्र से अकार का लोप हो जाता है।

नित्यं ङितः 3.4.19

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। अलोन्त्यस्यश -इति सलोपः—भवाव, भवाम।

व्याख्याः ङित् लकारो—लङ, लिङ, लुङ् और लङ के सकारान्त उत्तम का निमय लोप हो।

अलोन्त्यस्य इति — इस परिभाषा के बल से अन्त्य अल् सकार का ही लोप इस सूत्र के द्वारा होता है।

यद्यपि यह सूत्र ङित् लकारों के लिये विधान करता है, तथापि॰ लोटो लङ् वत्श के अतिदेश से लोट् में भी प्रवत्त होता है।

भवाम— वस् में शबादि और आट् कार्य करने पर॰ **भवावस्**श इस अवस्था में॰ लोटो लङ्वत्श के अतिदेश से सकार का लोप होकर **भवाव** रूप सिद्ध हुआ।

भवाम— इसी प्रकार बहुवचन में भी रूप सिद्ध होता है।

विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट-संप्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ् 3.3.131

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ्।

व्याख्याः 1 विधि, 2 निमन्त्रण, 3 आमन्त्रण, 4 अधीष्ट, 5 संप्रश्न, 6 प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।

इन का अर्थ सवस्तिर॰ लोटश लकार में कहा जा चुका है।

यासुट् परस्मैपदेषुदात्तो ङिच्च 3.4.103

लिङः परस्मैपदानां यासुड् आगमः, उदात्तो ङिच।

व्याख्याः लिङ् के परस्मैपद प्रत्ययों को॰ यासुट्श आगम हो और वह उदात्त और ङित् भी हो।

यासुट्श्में उट्श्इत्संज्ञक है। टित् होने से यह प्रत्यय का आदि अवयव बनकर उसी के आगे आता है।

ङित्श्होने से यासुट्श्का निमित्त मानकर गुण निषेध आदि होते हैं।

भूश धातु से लिङ् लकार आने पर यथाक्रम से तिबादि आदेश होगे। उनमें प्रथम के एकवचन में॰ तिप्श हुआ। इसके इकार का॰ इतश्चसे लोप हुआ। शप्, गुण, अव् आदेश हुए। तब लिङ् स्थानिक परस्मैपद ॰ तिप्श को॰ यासुटश आगम हुआ। इससे॰ भव यास् त्श यह स्थिति हुई।

लिङः सलोपोनन्त्यस्य 7.2.79

सार्वधातुकलिङोनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते—

व्याख्याः सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य—जो अन्त में न हो—सकार का लोप हो।

॰ भव यास् त यहाँ सार्वधातुक लिङ् यास् त्श है, इसका सकार अन्त्य नही। अतः लोप प्राप्त हुआ।॰ तिप्श तो लिङ् के स्थान में आदेश हुआ है। इसलिये स्थानिवद्भाव से लिङ् है और यासुट् लिङ् स्थानिक तिप् को आगम हुआ है। ॰ यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गह्यन्ते—आगम जिसको हो, उसी का अवयव होता है और उसके ग्रहण से ग्रहण किया जाता है—इस परिभाषा के बल से लिङ् के ग्रहण के समय तत्सहित का ग्रहण होता है। अतः॰ यास् त्श यह सम्पूर्ण लिङ् है।

अतो येयः 7.2.80

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य ृयास्श इत्यस्य इय्। गुणः।

व्याख्याः अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक के अवयव ृ यास्श को ृ इय्श आदेश हो।

भव यास् त्श यहाँ अदन्त अङ्ग भवश से परे सार्वधातुक लिङ् ृ यास् त्श के अवयव ृ यास्श को ृ इय्श हुआ। ृ भव इय् त्शयह स्थिति हुई।

गुण इति— उक्त स्थिति में अकार ओर इकार को ृ आद् गुणःश से एकार गुण एकादेश होकर ृ भवेय् त्श यह अवस्था हुई।

लोपो व्योर्वलि 6.1.66

वलि वकारयकारयोर्लोप भवेत्। भवेताम्।

व्याख्याः वल् परे रहते वकार और यकार का लोप हो।

भवेत्— भू धातु से लिङ के प्रथम के एकवचन में पूर्वोक्त प्रकार से ृ भवेय् त्श इस स्थिति में वल् वकार परे होने से यकार का लोप हुआ।

भवेताम्— द्विवचन में— भू तस–भू अ तस्–भू अ ताम्–भव् अ यास् ताम्–भव इय् ताम्–भवे य् ताम्–इस क्रम से कार्य होने पर रूप सिद्ध होता है।

झेरिति— लिङ् के झिश्को जुस्श्आदेश हो।

झेर्जुस् 3.4.180

लिङो झेर्जुस् स्यात्। भवेयुः। भवेः, भवेतम्, भवेत् भवेयम्, भवेव, भवेम।

व्याख्याः भवेयुः— लिङ् के प्रथम पुरुष के बहुवचन में ृ झिश्का प्रकृत सूत्र से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, सकार के विसर्ग हो जाते हैं। शेष कार्य पूर्ववत् होते हैं।

भवेः—लिङ् के मध्यम पुरुष के एक वचन में भवेय् स्श्ऐसी स्थिति में लोपो वयो र्वलिश्से यकार का लोप हो जाता है। सिप्श्के इकार का ङित् लकार होने से ृ इतश्चसूत्र से पहले ही लोप हो जाता है। सकार को विसर्ग होते हैं।

भवेतम्—भवेय् तम्—भवेतम्। यकार का लोप हुआ।

भवेत—भवेय् त–भवेय् व–भवेव। भवेम—भवेय् मस्–भवेय् म–भवेम्।

अन्तिम दो रूपों में ृ नित्यं ङितःश्से सकार का ओर लोपो व्योर्वलिश्से वकार का लोप होता है।

आशीर्लिङ्—

लिङ्-आशिषि 3.4.113

आशिषि लिङस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः आशीर्वाद अर्थ में लिङ् के स्थान में आदेश हुए ृ तिङ्श की आर्धधातुकसंज्ञा हो।

यह सूत्र ृ आशीर्लिङ्श के तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा करता है। अतः विधिलिङ् सामान्य सूत्र से ृ सार्वधातुकश है। अतएव वहाँ ृ शप्श होता है।

किद्-आशिषि 3.4.104

आशिषि लिङो यासुट् कित्। 'स्कोः संयोगाद्योःश्इति संलोपः।

व्याख्याः आशीर्वाद अर्थ के लिङ् को जो यासुट् आगम होता है, वह कित् हो।

भूश्धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् आने पर उसके स्थान में यथाक्रम से तिबादि आदेश हुए। उनकी पूर्व सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञा हो जाने से शप्श्नहीं होता, क्योंकि शप्श्सार्वधातुक तिङ् परे रहते होता है। तब लिङ् को यासुट् होकर भू यास् त्श्यह स्थिति बनी।

स्कोरिति— इसमें्‌ स्कोः संयोगाद्योरन्ते चश सूत्र से पदान्त संयोग्‌ स्त्श के आदि सकार का लोप हुआ तब भूयात् यह रूप बना।

यहाँ्‌ कित्श करने का फल गुणनिषेध अग्रिम सूत्र से होगा।

ग्क्ङिति च 1.1.5

गित्-कित्-ङित्-निमित्ते इग्लक्षणे गुणवद्धी न स्तः। भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः। भूयाः, भूयास्तम, भूयारत। भूयासम्, भूयास्व, भयास्म।

व्याख्याः गित्, कित् और ङित् प्रत्ययों के परे रहते्‌ इग्लक्षणश गुण और वद्धि कार्य नहीं होते। इग्लक्षण गुण और वद्धि वे हें, जिनका विधान उन सूत्रों के द्वारा हुआ हो जिन में्‌ इको गुणवद्धी श परिभाषा सूत्र के बल से्‌ इकःश पद की उपस्थिति होती है। तब इक् के स्थान में गुण और वद्धि का विधान किया गया हो, जैसे— सार्वधातुकार्धधातुकयोःश और्‌ पुगन्तलधूपधस्य चश इत्यादि।्‌ वद्धिरेचि श इत्यादि सूत्रों से जो वद्धि और गुण का विधान होता है, उन्हें्‌ इग्लक्षणश नहीं कहा जाता, क्योंकि उनमें्‌ इकःश पद की उपस्थिति नहीं होती।

भूयात्— भू धातु के आशीर्लिङ् के प्रथम पुरुष के एक वचन में पूर्वोक्त प्रकार से्‌ भू यास्त्श इसी स्थिति में्‌ स्कोः संयोगाद्योरन्ते चश सूत्र से संयोग्‌ स्त्श के आदि सकार का लोप हुआ। सार्वधातुक न होने से्‌ लिङः सलोपोनन्त्यस्य श सूत्र से सकार का लोप नहीं होता।्‌ यात्श आर्धधातुक परे होने से्‌ सार्वधातुकार्धधातुकयोःश सूत्र से इगन्त अङ ्‌ भूश के अन्त्य्‌ ऊकारश को गुण प्राप्त है। परन्तु आशीर्लिङ् का होने से्‌ यासुट्श कित् है, अतः उसके परे रहने से यहाँ गुण नहीं होता, प्रकृत सूत्र से गुण का निषेध हो जाता है।

द्विवचन— भू यास् ताम्—।्‌ तस्श को्‌ ताम्श आदेश हुआ

बहुवचन—भूयास्+उस्श —भूयासुः।्‌ झेर्जुसश से्‌ झिश को्‌ जुस्श हुआ।

मध्यम एकवचन—भू यास् स्— भूयाः। इकार लोप्‌ इतश्चश से। प्रथम सकार का संयोगादि लोप और द्वितीय सकार को विसर्ग।

द्विवचन— भूयास् तम्—भूयास्तम्।्‌ थस्श को्‌ तम्श आदेश हुआ।

बहुवचन— भूयास् त— भूयास्त।्‌ थश को्‌ तश आदेश हुआ।

उत्तम एकवचन—भूयास् अम्—भूयासम्।्‌ मिप्श को्‌ अम्श आदेश हुआ।

द्विवचन—भूयास् वस्—भूयास्व।्‌ नित्यं ङितःश से अन्त्य्‌ सश का लोप

बहुवचन—भूयास् मस्—भूयास्म।

ङित् का उदाहरण—

इतः। यहाँ अपित् सार्वधातुक होने से तस््‌ अपित् सार्वधातुकम्श सूत्र से ङिद्वत् है। अतः सार्वधातुक गुण नहीं होता।

गित् का उदाहरण—जिष्णुः। यहाँ्‌ ग्लाजिस्थश्च गस्नुःश सूत्र से्‌ ग्स्नुश प्रत्यय होता है, उसका गकार इत् हैं अतः आर्धधातुक होने से प्राप्त गुण नहीं होता। गित् प्रत्यय बहुत कम हैं, कित् और ङित् प्रत्यय अधिक होने से इस सूत्र के विषय अधिक हैं।

लुङ् लकार—

यहाँ वास् के सकार का लोप्‌स्कोः संयोगाद्योरन्ते चश्सूत्र से भी नहीं होता क्योंकि यहाँ संयोग है तो, पर पदान्त नहीं। झल् भी परे नहीं, क्योंकि तकार के आगे अकार है और वह अच् है।

लुङ 3.1.110

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

व्याख्याः (सामान्य) भूतकाल में क्रिया का होना प्रकट करना हो तो धातु से॒ लुङ्श लकार आता है।

माङि लुङ् 3.3.175

सर्वलकारापवादः।

व्याख्याः माङ्शउपपद रहते धातु से लुङ्शलकार हो।

सर्वेति—यह सब लकारों का अपवाद —बाधक—है, अर्थात् माङ् के योग में सभी लकारों के विषय में॒ लुङ्श ही होता है।

जैसे— शोकं वथा मा कथाः—व्यर्थ शोक न करो वा करे। क्लैव्यं मा गमः— नपुंसकता—कायरता—न करो वा करे इत्यादि। इन वाक्यों में॒ माङ्श उपपद रहने से॒ लङ्श लकार आया है। यहाँ भूतकाल नहीं।

ध्यान रहे आ और आङ् के समान माङ् और मा भी दो पद हैं और प्रयोग में दोनों का॒ माशरूप आता है। अतः किसका प्रयोग हुआ है? यह निर्णय करना कठिन नहीं दोनों का अर्थ॒ निषेधश रूप समान ही है।

मा वद् मा वदेद्श इत्यादि वाक्यों में॒ माङ्श शब्द नहीं अपितु॒ माङ्श से भिन्न निषेधार्थक॒ माश अव्यय पद है। जहाँ माश शब्द के साथ॒ लुङ्श लकार का प्रयोग न हो, वहाँ समझना चाहिये कि यहा॒ माङ्श नहीं और जहाँ॒ लुङ्श का प्रयोग हो, वहाँ॒ माङ्श ही समझना चाहिए।

स्मोत्तरे लङ् च 3.3.176

स्मोत्तरे माङि लङ् स्यात, चात् लुङ्।

व्याख्याः स्म परक माङ् उपपद रहते धातु से लङ्शलकार हो और लुङ् भी।

सूत्र में पठित चकार से लुङ् भी होता है जैसे—॒ मा स्म भवत्, भूत् वा—न हो— इस वाक्य में यथेच्छया स्मशपरक माङ् उपपद रहते लङ् और लुङ् दोनों का प्रयोग किया जा सकता है।

च्लि लुङि 3.1.43

शबाद्यपवादः।

व्याख्याः या॒ च्लि विधि शप्, श्यन् और श आदि विकरणों का अपवाद है।

भूश्धातु से क्रिया का सामान्य भूतकाल में होना प्रकट करने के लिये लुङ् लकार किया। लावस्था में॒ भूश अङ्ग को अट् आगम हुआ। तब लुङ् के स्थान में यथाक्रम से तिप्शआदि आदेश होंगे। प्रथम के एकवचन में तिप् होने पर उसके इकार का इतश्च से लोप होगा। अभू त्श्इस अवस्था में सार्वधातुक तिङ् तिप् परे रहते॒ शप्श प्राप्त होता है। उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से॒ च्लिश हो गया। तब॒ अभू च्लि त्श यह दशा बनी।

च्लेः सिच् 3.1.44

इचावितौ

व्याख्याः च्लिश को॒ सिच्श आदेश हो।

इचाविति—॒ सिचश में इकार और चकार इत्संज्ञक—अनुबन्ध—हैं। केवल॒ स्श शेष रहता है।

च्लिश सामान्य बोध के लिये रखा गया है, वैसे इसका प्रयोग कहीं नहीं होता। इसके स्थान में कही चङ् कहीं अङ् और प्रायः सिच् हो जाता है। इनके उदाहरण आगे मिलेंगे।

यहाँ॒ च्लिश के स्थान में सिच् होने पर॒ अ भू स् त्श यह स्थिति हई।

गति-स्था-घु-पा-भूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु 2.4.77

एभ्यः सिचो लुक स्यात्। गा-पौश इह ॄइणादेश—पिबतीश गह्येते।

व्याख्याः गाा, स्था, घुसंज्ञक, पा और भू धातुओ से परे सिच् का लुक् हो।

गा—पौ इति—गाश्से यहाँ ॄ इण्श के स्थान में आदेश होनेवाला लिया जाता है।ॄ इणो गाा लुङिश सूत्र सेॄ इण्श को ॄ गाश आदेश होता है। औरॄ पाश से पा पाने का ग्रहण होता है जिसकोॄ पिबश आदेश होता हैं अत एव कहा गया है—ॄ गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्श अर्थात्ॄ गाश ॄपाश सेॄ इण्श औरॄ पा पानेश धातुओं का ग्रहण करना चाहिये।

अभूत्—भू धातु के लुङ लकार के प्रथम पुरुष एक वचन मेंॄ अभूसत्श इस प्रकृत स्थिति मेंॄ भूश धातु से परेॄ सिच्श का लोप हो गया। तब फिरॄ अभूत्श बना।

यहाँ सार्वधातुकॄ त्श परे रहतेॄ सार्वधातुकार्धधातुकयोःश इस सूत्र से गुण प्राप्त होता है। उसका अग्रिम सूत्र से निषेध होकर अभूत् यही रूप सिद्ध होता है।

भूसुवोस्तिङि 7.3.88

भूश्सूश एतयोः सार्वधातुके तिङिपरे गुणाो न। अभूत्, अभूताम्, अभूवन्। अभू+, अभूतम्, अभूत। अभूवम्, अभूव, अभूम।

व्याख्याः भूश्और सूश्धातुओं को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण न हो।

अभूताम्— अभू स् ताम्—अभूताम्। अभूवन्— लुङ् के प्रथम पुरुष के बहुवचन में पूर्वोक्त प्रकार सेॄ अ भू अन्तिश इस स्थिति में लुङ् सम्बन्धी अच् परे मिल जाने सेॄ भुवो वुग् लुङ्लिटोरचिश सूत्र से धातु को वुक् आगम हुआ। तबॄ अभूव् अन्तिश इस स्थिति में च्लि, सिच्, सिच् का लोप, इकार का लोप और तकार का संयोगान्त लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

अभूः— अभू सि—अभू स्—अभू स् स् —अभू स् अभूः।

अभूवम्— अ भू मि—अ भू अम्—अ भू स् अम्—अभू अम्—अभूव् अम्—अभूवम्।

अभूवन्, अभूवम्—इन प्रयोगों में अजादि प्रत्यय होने सेॄ भुवो वुक् लुङ्लिटोरचिश सूत्र सेॄ वुक्श आगम होता हैं शेष रूपों की सिद्धि साधारण है। परन्तु ध्यान रहे कि च्लि, च्लि के स्थान मेंॄ सिच्श आदेश और सिच् के लोप की चर्चा साधन प्रक्रिया में अवश्य की जानी चाहिए।

न माङ्योगे 6.4.74

अडाटौ न स्तः। भा भवान् भूत्। मा स्म भवत्, भा स्म भूत्।

व्याख्याः माङ् के योग में अट् और आट् आगम नहीं होते।

भा भवान् भूत्श इस वाक्य में अट् न होने सेॄ भूतत्श यही रूप लुङ् के प्रथम के एकवचन में हुआ। इसी प्रकार स्म भवत्श्और मा स्म भूत्श में भी अट् नहीं हुआ।

लङ् लकार—

लिङ्निमित्ते लङ् क्रियातिपत्तौ 3.3.13

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पंत्तौ गम्यमानायाम्। अभविष्यत्, अभविष्यताम, अभविष्यन्। अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत। अभविष्यम्, अभविष्याव, अभिष्याम। सुवष्टिचेद् अभविष्यत्, तदा सुभिक्षम्भविष्यत्-इत्यादि ज्ञेयम्।

व्याख्याः लिङ् का निमित्त हेतुहेतुमद्भाव आदि है, उसमें यदि क्रिया का भविष्यत् काल में होना प्रकट करना हो तो धातु से लङ् लकार हो,

कृष्णं नमेत् चेत सुखं यायात्–कृष्ण को नमस्कार करे तो सुख प्राप्त करे़श इस वाक्य में नमस्कार–क्रिया सुख–प्राप्ति–क्रिया का हेतु है। सुखप्राप्ति–क्रिया सहेतुक है, इसलिये इसे़ हेतुमत्श कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ दोनों क्रियाओं का हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध है। इस में हेतुहेतुमतोर्लिङ्श्इस सूत्र से लिङ् लकार होता है।

परन्तु जब हेतुहेतुमद्भाव आदि के स्थल में भविष्यत् काल और क्रिया की असिद्धि प्रतीत होती हो तो हेतु और हेतुमत् दोनों क्रियाओं के लिये लङ् लकार आता है। जैसे –़ सुवष्टिश्चे द् अभाविष्यत्, तदा सुभिक्षमभविष्यत्–यदि अच्छी वष्टि होगी, तो सुभिक्ष–सुकाल–होगा।श इस वाक्य में वष्टि होना क्रिया सुभिक्ष होना क्रिया का हेतु है और यह भविष्यत् काल की है तथा इनकी असिद्धि यहाँ प्रतीत हो रही है। अतः दोनों से़ लङ्श लकार आया है।

अभविष्यत्– भू धातु से़ लङ्श लकार आने पर सर्वप्रथम भूश्अङ्ग को़ लुङ् लङ् लङ क्ष्वड्डुदात्तः श्सूत्र से अट्श आगम हुआ। तब लकार को यथाक्रम से तिबादि आदेश होंगे। प्रथम के एकवचन में तिप्, इसके इकार का इतश्चसे इत्संज्ञा होकर लोप,़ स्यतासी ललुटोः श से शप् को बाधकर स्यश प्रत्यय, बलादि आर्धधातुक होने से़ स्यश को़ आर्धधातुकत्येड् वलादेःश्से इट् आगम, सार्वधातुकार्धधातुकयोःश्से ऊकार को़ ओश गुण आदेश और ओकार को अवादेश होने के अनन्तर इट् के इकार इण से परे स्य प्रत्यय के अवयव सकार को आदेशप्रत्यययोःश्से मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

अभविष्यताम्– प्रथम पुरुष के द्विवचन में अट्, तस् को ताम् आदेश, स्य, इट, गुण अवादेश षत्व–क्रम से उक्त कार्य होकर सिद्ध हुआ।

अभविष्यन्– प्रथम पुरुष के बहुवचन में अट्, झि, इकार का लोप, झ्, अन्त आदेश, स्य, इट, गुण अव़ आदेश, तकार का संयोगान्त लोप और षत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।श

अभविष्यः– मध्यम पुरुष के एकवचन में अट्, सिप्, इकार का लोप, स्य, इट्, गुण, अव् आदेश, रुत्व और विसर्ग षत्व होकर रूप बना।

अभविष्यतम्– मध्यम पुरुष के द्विवचन में अट्, थस्,़ तम्श आदेश, स्य, इट्, गुण, अव् आदेश और षत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

अभविष्यत– मध्यम पुरुष के बहुवचन में थ को़ तश आदेश शेष प्रक्रिया पूर्ववत्।

अभविष्यत्– उत्तम पुरुष के एक वचन में अट्, मिप,़अम्श आदेश स्य, इट, गुण, अव् आदेश और षत्व होकर रूप बना।

अभविष्याव, अभविष्याम–इन उत्तम पुरुष के द्विवचन और बहुवचन के रूपों में़ अतो दीर्घो यञि श से दीर्घ औऱ नित्यं ङितःश से सकार का लोप पूर्वोक्त कार्यो से विशेष होते हें।

सुवष्टिरिति–सुवष्टि होती तो सुभिक्ष होता। यह क्रिया की असिद्धि स्पष्ट दिखाने के लिए उदाहरण दिया गया है। इसके सम्बन्ध में पहले निरूपण कर दिया है।

इस प्रकार पहली धातु़ भूश के सब रूप सिद्ध हुए। इनके सिद्धि के प्रकार में कार्यों के पौर्वापर्य का ध्यान अच्छी तरह रहना चाहिए। पौर्वापर्य के ठीक न होने पर सिद्धि प्रकार दूषित होगा। जैसे अभूवन्श में अन्त आदेश किये बिना वुक्श आगम करना असंगत ही होगा। क्योंकि वुक् अच् परे होने पर होता है।

जब तक़ झश को अन्त आदेश न किया जायगा तब तक़ वुक्श केसे हो सकता है। इसी प्रकार इसी प्रयोग में और ङित् लकारों के सभी रूपों में़ अट्श आगम लकार आने के समनन्तर ही अर्थात तिबादि आदेश होने के पहले ही कर देना चाहिये, क्योंकि़ लावस्थायाम् अट्श लकार अवस्था में ही अट् का विधान है। ङित् लकारों में इकार और सकार का लोप़ तिप्श आदि आदेश होने के समनन्तर कर देने चाहिये। षत्व और संयोगान्तलोप प्रभति कार्य अन्त में करना चाहिये।

उपसर्ग[1] के योग से धातुओं का अर्थ बदल जाता है। भू धातु का भी उपसर्गों के कारण अर्थ बदल जाता है, जैसे–

प्रभवति–समर्थ होता है या उत्पन्न होता है

पराभवति– तिरस्कार करता है, पराजित करता है।

सम्भवति— संभव है या पैदा होता है।

अनुभवति— अनुभव करता है।

उद्मवति—उत्पन्न होता है।

अभिभवति— तिरस्कार करता है।

परिभवति— प्रादुस् और आविस् उपसर्ग तो नहीं, पर इनके योग में भी अर्थ भिन्न हो जाता है। प्रादुर्भवति, आविर्भवति प्रकट होता है, उत्पन्न होता है। (दोनों का अर्थ एक है)।

इन लकारों के स्थान में होनेवाले तिबादि प्रत्ययों के परिनिष्ठित रूप यहाँ दिये जाते हें।

2 सार्वधातुक लकार—

लट्—	प्र.	पु.	ति,	तः,	अन्ति	।	लङ्—	प्र.	पु	त,	ताम्, अन्।
	म.	पु.	सि,	थः,	थ	।		म.	पु.	स्,	तम्, त।
	उ.	पु.	मि,	वः,	मः	।		उ.	पु.	अम्,	व, म।
लोट्—	तु—तात्	ताम्	अतु			।	विधिलिङ्—		इत्,	इताम्,	इयु।ः।
	हि[1] तात्, तम्,		त			।			इः,	इतम्,	इत।
	आनि,	आव,	आम			।			इयम्,	इव,	इम।

विधि लिङ् के ये रूप भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गणों में होंगे। शेष गणों में रूप होंगे—

यात्	याताम्,	युः।
याः,	यातम्,	यात्।
याम्,	याव,	याम।

आर्धधातुक लकार—

लिट्—	प्र. पु.	अ,	अतु,	उ.।
	म. पु.	थ,	अथुस्,	अ।
	उ. पु.	—ण(अ)	व,	म।

लुट्[2]— प्र. पु. ता, तारौ, तारः। लट्—स्यति, स्यतः स्यन्ति।

म. पु.	तासि,	तास्थः,	तास्थ	।		स्यसि,	स्यथः,	स्यथ।
उ. पु.	तास्मि,	तास्वः,	तास्म	।		स्यामि,	स्यावः,	स्यामः।
आशी—प्र. पु.	यात्,	यास्ताम्,	यासुः	।	लङ्—	स्यत्,	स्यताम्	स्यन्।
र्लिङ्—म. पु.	याः,	यास्तम्,	यास्त	।		स्यः	स्यतम्,	स्यत।
उ. पु.	यासम्,	यास्व,	यास्म	।		स्यम्,	स्याव,	स्याम्

ङित् लकारों में धातु के पहले अ—अट्—अवश्य रहेगा अजादि धातुओं में आ (आट्) रहेगा।

---

1. कहा भी है—‚ उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
   प्रहाराहारसंहार विहारपरिहारवत्।।श

2. यो तो‚ तिङ् शित् सार्वधातुकम्, से सभी तिङ् आदेश सार्वधातुक हैं परन्तु ‚लिट् चश सूत्र से लिट् और‚ लिङाशिषिश्से आर्शीर्लिङ् के आदेश तिङ् आर्धधातुक होते हें। लुट् में तास्, लट् और ऌट् और ऌङ् में स्य तथा लुङ् में च्लि के आदेश सिच्, अङ् और चङ्‚ आर्धधातुकं शेषःश्से आर्धधातुक होते हैं। अतः लिट् और आशीर्लिङ ही शुद्ध आर्धधातुक लकार हैं। लुट, ऌट्, ऌङ् और लुङ् में पूर्वोक्त प्रत्यय आध्रधातुक हैं, अतः इन्हें भी आर्धधातुक लकार कहा जाता है। तब शेष लट्, लङ्, लङ् और विधिलिङ् ही सार्वधातुक कहे जाते हें।

अन्य कार्य निमित्त से होते हैं। प्रत्ययों का कार्य इतना ही है इसी में उनका सुगम साधन प्रकार सम्मिलित है।

अत सातत्यगमने

अत् का अकार उदात्त और इत्संज्ञक है। इसका फल परस्मैपद होता है। यदि अनुदात्त होता तो ़ अनुदात्तङित आत्मनेपदम्श से आत्मनेपद होता। धातुओं में अनुबन्ध किस फल के लिये जोड़े गये हैं निम्नलिखित चक्र से स्पष्ट है–

अनुबन्ध	प्रयोजन	उदाहरण
अश (उदात्त)	परस्मैपद	अत–अतति।
अ (अनुदात्त)	आत्मनेपदु	एध–एधते।
अ (स्वरित)	उभयपद	यज–यजति, यजते।
आ ़	आदितश्च श सूत्र से निष्ठा (क्त, क्तवतु) में इट् का निषेध	ाफिला–प्रफुल्लः।
इ ़	इदितो नुम् धातोःश सूत्र से नुम्	विदि–विन्दति।
इर् ़	इरितो वाश से लुङ् में च्लि को ़ अङ्श	भिदि–अभिदत्।
ई	श्वीदितो निष्ठायाम्श्से निष्ठा में इट् निषेध	चिती–चित्तम्।
उ ़	उदितो वाश से क्त्वा में विकल्प से इट्	क्रम–क्रमित्वा, क्रान्त्वा
ऊ ़	स्वरति सूति–सूर्यत–धूा–ऊदितो वाश सूत्र स से विकल्प से इट्।	गुपू–गोपिता, गोप्ता।
_ऋ	'नाग्लोपि–शासु–ऋदिताम्' से 'णि' में उपधा ह्रस्व का निषेध।	लोकृ–प्रलुलोकत्।
	पुषादि–द्युतादि–लदितः परस्मैषदेषुश सूत्र से लुङ् में च्लि को अङ् आदेश।	गम्ल्–अगमत्।
ए	ह्म्यन्त–क्षण–श्वस्–जाग–णि–श्वि–एदिताम्श	कटे–अकटीत्।
ओ ़	ओदितश्चसे निष्ठा के तकार को नकार।	भुजो–भुग्नः।
ङ् ़	अनुदात्तङिश कत आत्मनेपदम् इससे आत्मनेपद	शीङ्–शेते।
ा्	स्वरितिातिः कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेश इस से उभयपद।	कृा्–करोति, कुरुते।
ाि ़	ाीतः क्तःश इससे वर्तमान में क्त।	ाभी–भीतः।
टु ़	ट्वितौथुच्श सूत्र से अथुच्	टुनदि–नन्दथुः।

---

1. भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गण की धातुओं से परे ़हिश का ़अतो हेःश सूत्र से लोप हो जाता है। स्वादि और तनादि गण की धातुओं से भी यदि उनमें संयाग न हो तो–श्णु (स्वादि), कुरु (तनादि), तथा क्र्यादि में श्ना को शानच् आदेश होने पर अशान, बधान।

2. यदि धातु सेट् हो तो लुट् और ऌङ् के इन रूपों में अन्तर पड़ जायगा, इट् होने से इश्बढ़ जायगा। लट् और लङ् में ़इश बढ़ने से सकार को मूर्धन्य भी हो जाता! लिट् के थल, व और म–इन प्रत्ययों में भी इन बढ़ जाता है। धातु सेट् है कि नहीं इसका निर्णय आगे स्पष्ट किया जायगा। लुङ् में भी इकार बढ़ेगा यदि स् (सिच्) विद्यमान हो। यदि लोप हुआ तो नहीं। कहाँ स्–सिच्श का लोप होता है–इसका भी निर्णय आगे किया जायगा।

डु	्	ड्वितः क्त्रिः इससे क्त्रि।	डुकृ्—कृत्रिमम्।
ष्	्	षिद्भिदादिभ्योङ्श इस से अङ् प्रत्यय भाव में।	त्रपूष्—त्रपा।

ये अनुबन्ध एक से अधिक भी धातुओं के साथ मिलते हैं। जैसें— डुकृ्श धातु में ृडुश और ृश दो अनुबन्ध हैं। डुपचष् पाके—में ृडुश ृअश और ृष्श ये तीन अनुबन्ध हैं। सबका अपना—अपना फल है, निष्फल कोई नहीं।

ककारादि और भी अनुबन्ध आते हैं। पर उनका इस प्रकार का कोई विशेष फल नहीं, केवल विशेषता—अन्य से भेद—बताने के लिये हैं। जैसे—इण् धातु में णकार। यह अन्य ृइक् स्मरणेश आदि धातुओं से भिन्नता बताने के लिये है।

अत इतिः अत् धातु का अर्थ—निरंतर जाना है।

अतति— ृ अत्श धातु से लट् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन में ृअत्+तिश इस स्थिति में ृकर्तरि शप्श सूत्र से शप् प्रत्यय हुआ। शकर और पकार इत्संज्ञा होकर लोप को प्राप्त हो जाते हें। इस प्रकार यह रूप सिद्ध होता है।

अत् धातु के लट् लकार के रूप —

प्र. पु.	अतति,	अततः,	अतन्ति।
म. पु.	अतसि,	अतथः,	अतथ।
उ. पु.	अतामि,	अतावः,	अतामः।

(दीर्घविधिसूत्रम्)

अत आदेः 7.4.70

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घ स्यात्। आत, आततुः आतुः। आतिथ, आतथुः आत। आत, आतिव, आतिम। अतिता, अतिष्यति, अततु।

व्याख्याः अभ्यास के आदि अकार की दीर्घ हो।

यदि ृअ अत्श इस अवस्था में अभ्यास के अकार को दीर्घ का विधान इस सूत्र से न किया जाता तो ृअतो गुणेश से दोनों अकारों के स्थान में एक ही ह्रस्व रह जाता।

आत इति—ृअत्श धातु के लिट् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन में ृअत् अश इस दशा में,ृअत्श को द्वित्व तथा अभ्यास—कार्य हलादिशेष होने पर ृअ अत्+अश इस स्थिति में अकार को अभ्यास के आदि होने से दीर्घ हो जाता है। तब दूसरे भाग के साथ सवर्ण दीर्घ होने पर रूप सिद्ध होता है।

आततुः, आतुः— लिट् के प्रथम पुरुष के द्विवचन और बहुवचन में ये रूप पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध होते हैं।

आतिथ—यहाँ वलादि आर्धधातुक होने से इट् आगम होकर रूप सिद्ध होता है।

आतिव, आतिम—लिट् के उत्तम पुरुष के द्विवचन और बहुवचन में भी वलादि होने से इट् आगम होता है।

लुट् लकार में ृइट्श हो जाता है। निम्नलिखित रूप बनते हैं—

प्र० अतिता, अतितारौ, अतितारः।

म० अतितासि, अतितास्थः, अतितास्थ।

उ० अतितास्मि, अतितास्वः, अतितास्मः।

लट् में भी इट् हो जाता है और ृस्यश के सकार को मूर्धस्य षकार भी निम्नलिखित रूप बनते हैं—

प्र० अतिष्यति, अतिष्यतः, अतिष्यन्ति।

म० अतिष्यसि, अतिष्यथः, अतिष्यथ।

उ अतिष्यामि, अतिष्यावः, अतिष्यामः।

लोट् के रूप निम्नलिखित बनते हैं—

प्र० अततु—तात्, अतताम्, अतन्तु।

म० आत—तात्, अततम्, अतत।

उ०अतानि, अताव,अताम।

आड् अजादीनाम् 6.4.27

अजादेरङ्स्याट् लुङ्लङ्लङ्क्षु। आतत्। अतेत्। अत्यात्, अत्यास्ताम्। लुङि सिचि इगगमे कृते—

व्याख्याः अजादि अङ्ग को आट् आगम हो लुङ्, लङ् और लङ् परे होने पर।

यह सूत्र लुङ्लङ्लङ्क्ष्वडुदात्तःश का बाधक है। अतः अजादि धातुओं का इस से आट् आगम होगा।

आतत्—अत् धातु के लङ् के प्रथम पुरुष के एक वचन में लावस्था में प्रकृत सूत्र से अजादि होने के कारण अङ्ग को ृआट्श आगम होता है।

तब ृआटश्च सूत्र से ृआट्श के आकार और धातु के ृअकारश की वद्धि एकादेश ृआकारश होता है। ृशप्श का अकार रहता है और शेष कार्य यथा प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार अन्य रूप भी बनते हैं। लङ् के सम्पूर्ण रूप निम्नलिखित हैं—

प्र० आतत्, आतताम्, आतन्।

म० आतः, आततम्, आतत।

उ० आतम्, आताव, आताम।

विधिलिङ—	आशीर्लिङ्—
प्र० अतेत, अतेताम्, अतेयुः।	प्र० अत्यात्, अत्यास्ताम्, अत्यासुः।
म० अतेः अतेतम्, अतेत।	म० अत्याः, अत्यास्तम्, अत्यास्त।
उ० अतेयम्, अतेव, अतेम।	उ० अत्यासम, अत्यास्व, अत्यास्म।

लुङीति—लुङ् में च्लि को ृसिच्श आदेश होगा। ृसिच्श का ृस्श शेष रहता है। ृसिच्श ृआर्धधातुकं शेषःश से आर्धधातुक है और बलादि भी है। अतः ृआर्धधातुकस्येड् वलादेःश से इट् आगम हो जायगा। तब ृआत् इ स् त ऐसी स्थिति बन जायगी।श

अस्ति-सिचोपक्ते 7.3.93

विद्यमानात् सिचः, अस्तेश्च परस्यापक्तस्य हल ईडागमः।

(सलोपविधिसूत्रम्)

व्याख्याः विद्यमान सिच् और अस् धातु से परे अपक्त हल् को ृईट्श आगम हो।

आत् इ स् त्श यहाँ सिच् विद्यमान है, इससे परे अपक्त हल् तकार है। इसको ृईट्श आगम हो जायगा। तब ृआत्श इ स् ई त् यह स्थिति हुई।

इट ईटि 7.2.27

इटः परस्य सस्य लोपः स्याद् ईटि परे

व्याख्याः इट् से परे सकार का लोप हो ईट् पर होने पर।

आत् इ स् ई त्श तहाँ इट् से परे सकार है और उससे परे इट् भी है, अतः सकार का लोप हो गया तब ृआत् इ ईत्श इस दशा में इकार और ईकार को सवर्णदीर्घ प्राप्त होता है। परन्तु ृइट ईटि 8।2।28श इस त्रिपादी सूत्र से हुए लोप के असिद्ध होने से बीच में सकार का व्यवधान हो जाता है। इसका वारण अग्रिम वार्तिक से होता है।

(वा) सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः। आतीत् आतिष्टाम्।

(जुसादेशविधिसूत्रम्)

व्याख्याः सिच् का लोप एकादेश के विषय में सिद्ध कहना चाहिये।

इस वार्तिक से सिच् लोप के सिद्ध रहने पर सवर्णदीर्घ होकर आतीत् रूप सिद्ध होता है।

आतिष्टाम्—द्विवचन में ृतस्श को ृताम्श आदेश होता है। सकार को मूर्धन्य षकार हो जाता है। तब ष्टुत्व से तकार को टकार होकर रूप बनता है।

झि में ृअत् इ स् झिश इस दशा के होने पर—

सिज्-अभ्यस्त-विदिभ्यश्च 3.4.109

सिचः, अभ्यस्ताद्, विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्। आतिषुः। आतीः, अतिष्टम्, आतिष्ट। आतिषम्, आतिष्व, आतिष्म। आतिष्यत्। षिध गत्याम्।

व्याख्याः सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त संज्ञक जाग आदि धातुओं और विद् धातु से परे ङित् लकार सम्बन्धी झि कोृजुस्श्आदेश हो।

सिच् से परे तो लुङ् का ही झि मिलता है, पर अन्य अभ्यस्त आदि से परे अन्य लकारों के भी आते हैं, उनके लिये ङित् सम्बन्धी ृझिश कहा जाता है।

आतिषुः—झि को जुस् होने पर रूप सिद्ध होता है।

आतीः—आदि अन्य रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

लङ् में——			
	प्र० आतिष्यत्,	आतिष्यताम्,	आतिष्यन्।
	म० आतिष्यः,	आतिष्यतम्,	आतिष्यत
	उ० आतिष्यम्,	आतिष्याव,	आतिष्याम

षिध् धातु

व्याख्याः षिध इति— षिध् धातु का अर्थ ृजानाश है।

ह्रस्वं लघ 1.4.10

व्याख्याः ह्रस्व स्वर की लघु संज्ञा होती है।

संयोगे गुरु 1.4.11

व्याख्याः संयोग परे होने पर ह्रस्व की गुरु संज्ञा होती है।

दीर्घ च 1.4.12

गुरु स्यात्।

व्याख्याः दीर्घ की (भी) गुरु संज्ञा।

पुगन्त-लघूपधस्य च 7.3.86

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। धात्वादेः-श इति-सेधति। षत्वम्-सिषेध।

व्याख्याः पुगन्त (पुक् आगम जिसके अन्त में हो) और लघूपध (जिसकी उपधा लधु) अङ्गके इक् को गुण हो सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

पुगन्त अङ्गकेंउदाहरण ृहेपयतिश आदि ण्यन्त प्रकिया में है। ृह्रीश धातु से णि आने पर अर्तिह्रीब्लीरिक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौश इस से पुक् आगम होता है। उपधा यहाँ लघु नहीं, क्योंकि ृइकार उपधा दीर्घ है और दीर्घ की गुरुसंज्ञा होती है। अतः यहाँ गुण करना ृपुगन्तश कहने का फल है।

लघूपध का उदाहरण ृसिध्श धातु ही है, इसमें उपधा इकार लघु है।

धात्वादेरिति—ृधात्वादेः षः सःश सूत्र से धातु का आदि षकार सकार बन जाता है, प्रयोग में सकार ही मिलता है। षोपदेश का फल षत्व है, जो आगे मालूम पड़ेगा।

सेधति—सिध् के लट् लकार में प्रथम के एकवचन तिप् में शप् आने पर प्रकृत सूत्र से लघु उपधा इकार को गुण होकर रूप सिद्ध होता है।

लट् के अन्य रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

प्र० सेधति, सेधतः, सेधन्ति।

म० सेधसि, सेधथः, सेधथः।

उ० सेधामि, सेधाने सेधामः।

सिषेध—लिट् के प्रथम के एकवचन में तिप् को णल् आदेश, धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य, उपधा को लघु होने से गुण होकर ृसिसेधश ऐसी स्थिति बन जाने पर अभ्यास के इकार इण् से परे अभ्यास से परे के सकार को आदेश रूप होने से ृआदेशप्रत्यययोश्से मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

असंयोगाल्लिट् कित् 1.2.5

असंयोगात् परोपित् लिट् कित् स्यात् सिषिधतुः, सिषिधुः। सिषेधिथ, सिषिधथुः, सिषिध। सिषेध, सिषिधिव, सिषिधिम। सेधिता, सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत्।

व्याख्याः असंयोग (संयोग भिन्न) से परे अपित् लिट् कित् हो।

णल्, थल् और णल् पित्, सिप् और मिप् इन तीन पित् तिङों के स्थान में होते हैं। इन को छोड़कर शेष सभी आदेश अपित् हैं। अतः ये सब इस सूत्र से कित् हो जाते हैं। यहाँ कित् होने का फल ग्क्ङिति चश्सूत्र से गुण निषेध है।

सिषिधतुः— यहाँ प्रकृत सूत्र से अतुस् के कित् हाने से लघूपध गुण न हुआ। शेष कार्य पूर्ववत् होंगे। लिट् के अन्य रूप भी इसी प्रकार बनेंगे।

शेष लकारों के रूप प्रायः ृअत्श धातु के समान बनेंगे। उन सब को यहाँ लिखा जाता है। सिद्धि भी साधारणतः ृअत्श धातु के रूपों के समान होगी।

लुट्—	प्र० सेधिता,	सेधितारौ,	सेधितारः।	लट—	प्र० सेधिष्यति	सेधिष्यतः,	सेधिष्यन्ति।
	म० सेधितासि	सेधितास्थः,	सेधितास्थ।		म० सेधिष्यमि,	सेधिष्यथः	सेधिष्यथ।
	उ० सेधितास्मि	सेधितास्वः,	सेधितास्म।		उ० सेधिष्यामि	सेधिषवः	सेधिष्यामः।
लोट्—	प्र० सेधतु—तात्	सेधताम्,	सेधन्तु।	लङ्—	प्र० असेधत्,	असेधताम्,	असेधन्
	म० सेध— ,,	सेधतम्	सेधत।		म० असेधः,	असेधतम्,	असेधत।
	उ० सेधानि,	सेधाव,	सेधाम।		उ० असेधम्,	असेधाव,	असेधाम्
विधिलिङ्—				आशीर्लिङ्—			
	प्र० सेधेत्,	सेधेताम्,	सेधेयुः।		प्र० सिध्यात्,	सिध्यास्ताम्,	सिध्यासुः।
	म० सेधेः,	सेधेतम्	सेधेत।		म० सिध्याः,	सिध्यास्तम्,	सिध्यास्त।
	उ० सेधेयम्,	सेधेव	सेधेम।		उ० सिध्यासम्,	सिध्यास्व,	सिध्यास्म।
लुङ्—	प्र० असेधीत्	असेधिष्टाम्,	असेधिषुः।	लङ्—	प्र० असेधिष्यत्,	असेधिष्यताम्,	असेधिष्यन्।
	म० असेधीः	असेधिष्टम,	असेधिष्ट।		म० असेधिष्यः,	असेधिष्यतम्,	असेधिष्यत।
	उ० असेधिषम्,	असेधिष्व	असेधिष्म।		उ० असेधिष्यम्,	असेधिष्याव,	असेधिष्याम।

उपसर्गो के योग में—निषेधति—मना करता है। प्रतिषेधति—मना करता है।

चिती संज्ञाने शुच शोके गद व्यक्तायां वाचि.

गदति

व्याख्याः इसी प्रकार चिती (होश में आना) और शुच (चिन्ता या शोक करना) धातुओं के रूप भी बनते हैं। इन दोनों धातुओं के प्रत्येक लकार का एक एक रूप नीचे दिया जाता है–

चिती–चेतति। चिचेत। चेतिता। चेतिष्यति। चेततु। अचेतत्। चेतेत्। चित्यात् अचेतीत्। अचेतिष्यत्।

शुच– शोचति। शुशोच। शोचिता। शोचिष्यति। शोचतु। अशोचत्। शोचेत्। शोच्यात्। अशोचीत्। अशोचिष्यत्।

गद इति–गद धातु व्यक्त बोलने अर्थ में आता है। व्यक्त–स्पष्ट–बोलना मनुष्यों का होता है। पशु पक्षी आदि का बोलना अस्पष्ट होता है।

इसके लट् में रूप पूर्ववत् बनेंगे–

प्र० गदति, गदतः, गदन्ति।

म० गदसि, गदथः गदथ।

उ० गदामि, गदावः, गदामः।

(णत्वविधिसूत्रम्)

नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्रातिप्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्घिषु च 8.4.17

उपसर्गस्थात् निमित्तात् परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति।

व्याख्याः उपसर्ग में स्थित निमित्त–रकार–से परे ृनिश उपसर्ग के नकार को णकार हो ृगदश आदि धातु परे होने पर।

नेर्गद– क सूत्रस्थ गद्शआदि धातुओं का परिचय–

1 गद्–स्पष्ट बोलना (भ्वादि)।	1०. वा बहना (हवा का) (अदादि)।
2 नद्–अस्पष्ट बोलना ,, ।	11. द्रा–चलना ,, ।
3 पत्–गिरना ,, ।	12. प्सा–खाना ,, ।
4 पद्–चलना (दिवादि)।	13. वप्–बोना (भ्वादि)।
5 घुसंज्ञक ृदाश ृधाश आदि।	14. वह्–ले जाना ,, ।
6 मा–नापना ।	15. शम्–शान्त होना (दिवादि)।
7 षे–नाश करना (दिवादि)।	16. चि–इकठ्ठा करना (स्वादि)।
8. हन्–मारना (अदादि) ।	17. दिह्–लीपना (अदादि) ।
9.या–जाना (अदादि) ।	

जब धातु के पहले ृनिश उपसर्ग होगा और उससे पहले एक और उपसर्ग होगा–जिसमें णत्व का निमित्त रेफ होगा, तब इस सूत्र से ृनिश उपसर्ग के नकार को णकार होगा।

समानपद–अखण्डपद–न होने से ृअट् कुप्वाङ्नुम्'श सूत्र से यहाँ णत्व प्राप्त नहीं था। अतः इस सूत्र के द्वारा णत्व का विधान किया गया।

प्रणिगदति–यहाँ उपसर्ग ृप्रश में निमित्त रकार स्थित है। उससे परे ृनिश उपसर्ग है, उसके नकार को णत्व हुआ।

इसी प्रकार–प्रणिनदति, प्रणिपतति, प्रणिपद्यते, प्रणिदधाति, प्रणिददाति, प्रणियच्छति, प्रणिद्यति, प्रणिदयते, प्रणिमाति, प्रणिष्याति, प्रणिहन्ति, प्रणियाति, प्रणिवाति, प्रणिद्राति, प्रणिप्साति, प्रणिवपति, प्रणिवहति, प्रणिशाम्यति और प्रणिचनोति।

कुहोश्चुः 7.4.62

अभ्यासकवर्ग-हकारयोश्चवर्गादेशः।

व्याख्याः अभ्यास के कवर्ग और हकार को चवर्ग हो।

कवर्ग के वर्णों को क्रमशः चवर्ग के वर्ण आदेश होंगे, प्रथम को प्रथम इत्यादि। हकार को आन्तरतम्य से झकार होगा। सपादसप्तध्यायी का होने से इस सूत्र की प्रवत्ति पहले होगी।‚अभ्यासे चर्च 8।4।54श से चर् और जश् आदेश बाद की होंगे। जैसे –‚चखानश्यहाँ पहले खश्को चवर्ग छश्आदेश होगा, उसके बाद चर् च होगा। जघानश्में पहले हकार को चवर्ग झकार होगा, तब जश् जकार होगा।

प्रकृत में गद्श्धातु के लिट् लकार में द्वित्व और हलादि शेष करने पर इस सूत्र से अभ्यास के कवर्ग गकार को चवर्ग जकार होता है। प्रथम के एकवचन में‚जगद् अश यह स्थिति हुई।

अत उपधाया 7.2.116

उपधाया अतो वद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे। जगाद, जगदतुः, जगदुः। जगदिथ, जगदथुः जगद।

व्याख्याः उपधा अकार को वद्धि हो ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर।

जगाद— गद् धातु के लिट्, लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में पूर्वोक्त प्रकार से सिद्धि हुई‚जगद् +अ स्थिति में णित् प्रत्यय णल् (अ) परे है। अतः उपधा अकार को वद्धि आकार हो गया। तब जगाद रूप बना।

जगदतुः— आदि रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होंगे।

णल् उत्तमो वा 7.1.91

उत्तमो णल् वा णित् स्यात्। जगाद, जगद। जगदिब। जगदिम। गदिता। गदिष्यति। गदतु। अगदत्। गदेत्। गद्यात्।

व्याख्याः उत्तम का णल् विकल्प से णित् हो।

णित्श्पक्ष में वद्धि कार्य होगा। अभाव पक्ष में वद्धि न होगी।

जगाद— प्रकृत में णित् पक्ष में अत उपधायाःश से वद्धि होकर रूप बना। अभाव पक्ष में वद्धि न हुई तो जगद रूप बना।

जगदिव और जगदिम— वश्और मश्में वलादि आर्धधातुक होने से‚आर्धधातुकस्येड् वलादेःश से इट् आगम होकर रूप बनेंगे।

शेष लकारों के रूप में पूर्ववत् बनते हैं।

अतो हलादेर्लधोः 7.1.7

हलादेर्लघोरकारस्य वद्धिर्वा इडादौ परस्मैपदे सिचि। अगादीत्, अगदीत्। अगदिष्यत्।

व्याख्याः हलादि अङ्ग के अवयव लघु अकार को वद्धि विकल्प से हो, इडादि परस्मैपद सिच् परे होने पर।

अगादीत्— लुङ में अट्, तिप्, इकार लोप, च्लि, च्लि को सिच् आदेश, सिच् को इट् आगम और अपक्त सकार को ईट्श आगम होने पर‚अगद् इ स् ईत्श ऐसी स्थिति बन जाने पर हलादि अङ्गगद्श है उससे परे इडादि परस्पमैपद सिच् भी है अतः इसके लघु–गकारोत्तरवर्ती–अकार की वद्धि हुई। तब सिच् का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ। अभाव पक्ष में अगदीत्।

लुङ् के शेष रूप पूर्ववत् बनें—

प्र० अगादीत्–अगदीत्; अगादिष्टाम्–अगदिष्टाम; अगादिषु–अगदिषुः; म० अगादीः–अगदीः; अगादिष्टम्–अगदिष्टम्; अगादिष्ट–अगदिष्ट। उ० अगादिषम्–अगदिषम्; अगादिष्व–अगदिष्व; अगादिष्म, अगदिष्म।

अगदिष्यत् आदि– लङ् के रूप भी पूर्ववत् सिद्ध होंगे।

णद् अव्यक्त शब्दे

णद् धातु का अर्थ अस्पष्ट शब्द –अर्थात् पशु आदियों का शब्द है।

णो नः 6.1.65

धात्वादेर्णस्य नः णोपदेशास्तु अनर्द-नाटि-नाथ-नाध-नन्द-नक्क-नृ नतः

व्याख्याः धातु के आदि णकार को नकार हो।

इस सूत्र से सभी णकारादि धातु नकारादि बन जाते हें। प्रयोग में सब नकाराादि ही रहेंगे। इस दशा में यह निर्णय न हो सकेगा कि कौन सी धातु णकारादि है और कौन नकारादि। इसके लिये निम्न निर्णय भाष्य के अनुसार हुआ है–

णोपदेशा इति– 1 नर्द शब्दे (भ्वादि) अस्पष्ट बोलना, 2 नट अवस्कन्दे 8) चुरादि नाचना, 3 नाथ याच्ाोपतापैश्वर्याशीषुः (भ्वादि) मांगना आदि 4 नाध याचादिषु 5 टुनदि समद्धौ (भ्वादि) आनन्दित होना, 7 नक्क नाशने (चुरादि) नाश करना, 7 नृ नये (भ्वादि, कथादि) ले जाना, 8 नती गात्रविक्षेषे (दिवादि) नाचना–इन आठ धातुओं को छोड़कर शेष नकारादि धातु णोपदेश हैं अर्थात् उनका नकार णकार से बना हुआ है।

णोपदेश होने का फल णत्व है। वह आगे बताया जायगा।

उपसर्गाद् असमासेपि णोदपदेशस्य 7.8.14

उपसर्गस्थात् निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः। प्रणदति। प्रणिनदति। नदति। ननाद।

व्याख्याः उपसर्ग में स्थित निमित्त–रेफ–से परे णोपदेश धातु के नकार को णकार हो।

पूर्वोक्त आठ धातुओं से भिन्न होने के कारण नदश्धातु णोपदेश है।

इसके नकार को प्र उपसर्ग में स्थित निमित्त रकार से पर होने के कारण णकार हो जायगा, अतः प्रणदति रूप बना।

प्रणिनदति–यहाँ नेर्गदनद–आदि सूत्र से निश्के नकार को णकार हुआ है।

नदति–यह लट् के प्रथम के एकवचन का रूप है। इसकी सिद्धि गदतिश्आदि के समान होती है।

ननाद–नद् धातु के लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन में ृनद्+अश इस स्थिति में द्वित्व, अभ्यासकार्य होने पर अत उपधायाःश से उपधावद्धि होती है।

अत एकहलमध्येनादेशादेर्लिटि 6.4.120

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गम्, तदवयवस्यासंयुक्तहल् मध्यस्थस्यात एत्वम्, अभ्यासलोपश्च किति लिटि। नेदतुः नेदुः।

व्याख्याः जिस अङ्ग के आदि वर्ण के स्थान में लिट् को निमित्त मानकर आदेश न हुआ हो, उसके अवयव, संयोग–रहित हल के साथ वर्तमान ह्रस्व अकार को एकार और अभ्यास का लोप हो कित् लिट् परे होने पर।

यह सूत्र दो कार्य–एत्व और अभ्यास का लोप करता है।

इस सूत्र की प्रवत्ति के लिये चार बातों का ध्यान रखना चाहि' 1 ह्रस्व अकार हो, 2 संयोग न हो, 3 अङ्ग के आदि वर्ण को लिट् को निमित्त बनाकर आदेश न हुआ हो, 4 कित् लिट् परे हो। इसीलिये–ृसिषिधतुःश में सूत्र की प्रवत्ति नहीं हुई क्योंकि यहाँ अकार नहीं। ररासेश्में ह्रस्व अकार न होने से, तत्सरतुःश्में संयोगरहित न होने से और जगदतुःश्में आदेश होने से सूत्र की प्रवत्ति नहीं हुई। आदेश भी लिट् को निमित्त मानकर हुआ हो, तब सूत्र प्रवत्त होगा। जैसे–नेदतुःश्और सेहेश्इत्यादि इनमें जो नकारश्और सकारश्आदेश णो नःश्और घात्वादेः षः सःश सूत्रों से हुए हैं, वे लिट् को निमित्त मानकर नहीं हुए हैं, ये आदेश निर्निमित्तक हैं। ननादश में कित् लिट् न होने से सूत्र प्रवत्त नहीं होता।

नेदतुः—प्रकृत नद् धातु में ृनद् नद् अतुस्श इस दशा में इस सूत्र की प्रवत्ति होगी। क्योंकि इसमें ह्रस्व अकार भी है, संयोग का अभाव भी है, लिट्निमित्तक आदेश यहाँ नहीं हुआ है, कित् लिट् अतुस् परे हैं अतः इस सूत्र से अभ्यास का लोप और अकार को एकार हो गया। तब नेदतुः रूप सिद्ध हुआ।

नेदुः— यह रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होता है।

थलश सिप् के स्थान में होने से पित् है। अतः पित्भिन्न न होने से ृअसंयोगात् लिट्—कित्श से कित् नहीं हुआ। अतः इसमें उक्तकार्य प्राप्त नहीं।

थलि स सेटि 6.4.129

नेदिथ, नेदथुः, नेद। ननाद-ननद, नेदिव, नेदिम। नदिता। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। अनादीत्, अनदीत्। अनदिष्यत्। प्रागुक्तं स्यात्

व्याख्याः इट्युक्त—थल परे रहते भी पूर्वोक्त दशा से पूर्वोक्त कार्य—एत्व और अभ्यास का लोप—होते हैं।

नेदिथ-नद् धातु का थल् में नेदिथ रूप सिद्ध होता है। यहाँ इट् हुआ है, अतः सेट् थल् परे होने से एत्व और अभ्यास का लोप हुआ।

कित् लिट् में पूर्वसूत्र और थल में यह सूत्र एत्व और अभ्यास का लोप कर—देता है, तब बचे रहते हैं—प्रथम और उत्तम के एकवचन—ये दो। अपित् लिट् होने से द्विवचन और बहुवचन के सभी प्रत्यय ृअसंयोगात् लिट् कित्श से कित् हैं। अतएव आगे—नेद, नेदिव, नेदिम रूप बनते हैं

ननाद, ननद- ये दो रूप उत्तम के एकवचन में बनते हैं। क्योंकि वहाँ ृणलुत्तमो वाश से णल् विकल्प से णित् है। णित् पक्ष में ृअत उपधायाश से वद्धि हो जाती है। और अभावपक्ष में वद्धि नहीं होती।

नदिता आदि शेष लकारों के रूप की सिद्धि पूर्ववत् होती है।

अनादीत्—अनदीत्—ये दो रूप लुङ् के प्रथम के एकवचन हैं। यहाँ ृअतो हलादेर्लघोःश से वद्धि विकल्प से होती है। वद्धिपक्ष में अनादीत् और अभावपक्ष में अनदीत् रूप बनते हैं।

इस धातु का प्रयोग जोर के शब्द करने में होता है। जैसे—बैल, वीर पुरुष मेघ और सिंह आदि के। वषभो नदति—बैल—सांड—डुकरता है। मेघा नदन्ति—बादल गरजते हैं। सिंहो नदति—सिंह गरजता है।

उपसर्गों के योग से इस धातु का अर्थ बदलता नहीं, पर हाँ, धातु के अर्थ में उत्कर्ष (जोर) पैदा हो जाता है जैसे—प्रणदति—जोर से गरजता है। इसी प्रकार —प्रणिनदति, निनदति आदि।

टुनदिं सभद्धौ

टुनदि धातु समद्धि अर्थ में आता है। समद्धि से तात्पर्य यहाँ आनन्द से है क्योंकि समद्धि का फल आनन्द है।

टुनदिश(समद्धि, आनन्द) धातु के उपदेश अवस्था में वर्तमान आदि ृटुश की इत्संज्ञा हुई। तब लोप हुआ।

टुश्की इत्संज्ञा का फल ृट्वितोथुच्श सूत्र से अथुच् प्रत्यय होकर नन्दथुः है।

आदिर्ञि-टु-डवः 1.3.5

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः।

व्याख्याः उपदेश में धातु के आदि ञि, टु और डु की इत्संज्ञा हो।

इ कार भी अनुबन्ध है। 'नद्'शबचा रहता है। इकार के इत् होने का फल अग्रिम सूत्र से नुम् होता है।

96 इदितो नुम् धातोः 7.1.58

नन्दति। ननन्दं नन्दिता। नन्दिष्यति। नन्दतु। अनन्दत्। नन्देत्। नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्।

व्याख्याः इदित् जिसके ह्रस्व इकार की इत्संज्ञा हुई हो—धातु को नुम् आगम हो।

नुम्श के उकार मकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है। अतः मित् होने से ृमिद्चोन्त्यात्परःश सूत्र से यह अन्त्य अच् के आगे होता है।

यह नुम् आगम निर्निमित्तक है। इसलिये यह सबसे पहले होगा। इदित् धातुओं की रूपसिद्धि में सबसे पहले ृनुम्श आगम दिखलाना चाहिये।

प्रकृत धातु को भी सबसे प्रथम ृनुम्श होगा। तब नन्द् यह रूप बना। इसी के रूप बनेंगे। रूपसिद्धि का प्रकार पूर्ववत् ही है लिट् में नुम् हो जाने के अनन्तर संयोग हो जान से एत्व और अभ्यास का लोप नहीं होता, निम्नलिखित रूप बनते हैं—

प्र० ननन्द, ननन्दतु, ननन्दुः। म० ननन्दिथ, ननन्दथुः, ननन्द। उ० ननन्द, ननन्दिव, ननन्दिम।

संयोग से पूर्व होने के कारण अकार गुरु हो जाता है, लघु नहीं रहता। अतः अत उपधायाः से वद्धि नहीं होती।

अनन्दीत् में संयोग परे हाने से गुरु हो जाने के कारण लघु न होने से ृअतो हलोदेर्लघोःश्से वैकल्पिक वद्धि नहीं हुई।

वा. अर्च पूजायाम। अर्चति।

व्याख्याः अर्च पूजायाम् इति—अर्च धातु पूजा अर्थ में है।

अर्चति—लट् के प्र. पु. एकवचन तिप् में शप् होकर रूप सिद्ध होगया। इसी प्रकार लट् के अन्य रूप भी सिद्ध होते हैं।

तस्माद् नुड् द्विहलः 7.4.71

द्विहलो दीर्घीभूताद् अकारात् परस्य नुट् स्यात्। आनर्च, आनर्चतुः। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत् अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्।

व्याख्याः दो हल् जिस धातु में हों, उसके दीर्घ हुए अकार से पर को नुट् हो।

दो हल् से तात्पर्य अनेक हल् का है अर्थात् एक से अधिक हल् होने चाहिये—दो हों या उससे भी अधिक हों।

दीर्घ हुएश अकार का तात्पर्य यह है कि ृअत आदेःश से अकार को दीर्घ हुआ हो।

आनर्च—अर्च धातु के लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन णल् में द्वित्व होकर अभ्यास कार्य होने पर ृअ अर्च अश इस दशा में ृअत आदेःश से अभ्यास के अकार को दीर्घ होने पर ृअ अर्च अश इस स्थिति में धातु में रकार और चकार ये दो हल् हैं। और दीर्घ हुए अभ्यास में स्थित आकार भी यहाँ है, अतः उससे परे अकार को नुट् आगम होगा। टित् होने से उस अकार के पहले ृनुट्श होगा। इस प्रकार रूप सिद्ध हुआ।

लिट् के अन्य रूपों में भी ृनुट्श होगा। ये रूप बनेंगे—

प्र० आनर्च,आनर्चतुः आनर्चुः। म० आनर्चिथ, आनर्चथुः आनर्च।० आनर्च, आनर्चिव, आनर्चिम।

अन्य लकारों के रूप पूर्ववत् ही बनेंगे। ङित् लकारों में अजादि होने से आडजादीनाम्श्से आट् आगम और आटश्च से वद्धि होगी।

व्रज गतौ

व्रजति।वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्।

व्याख्याः व्रज् धातु का ृजानाश अर्थ है। इसके रूप भी पूर्वधातुओं के समान ही बनते हें। लिट् में निम्नलिखित रूप बनते हैं—

प्र० वव्राज, वव्रजतुः वव्रजुः। म० वव्रजिथ, वव्रजथुः, वव्रज। उ० वव्राज—वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम।

यहाँ एत्व और अभ्यास का लोप नहीं होता क्योंकि यहाँ 'व्र' में संयोग है और असंयुक्त हल्मध्यस्थ अकार को एत्व होता है तथा वहीं अभ्यास का लोप होता है।

वद-व्रज हलन्तस्याचः 7.1.3

एषामचो वद्धिः सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्।

व्याख्याः वद्, व्रज और हलन्त धातुओं के अच् को वद्धि हो परस्मैपदपरक सिच् परे रहते।

यद्यपि वद् और व्रज भी हलन्त धातु हैं, तथापि ृनेटिश सूत्र से प्राप्त वद्धिनिषेध के बाध के लिये यहाँ इनका ग्रहण किया गया है।

अव्राजीत—ृ'व्रज्' धातु के अच् को वद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अन्य रूप भी बनेंगे।

उपसर्ग के योग में—प्रव्रजति, परिव्रजति—संन्यास लेता है।

अनुव्रजति—पीछे चलता है।

कटे वर्षावरणयोः

कटति। चकाट, चकटतुः। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्! कट्यात्।

(वद्धिनिषेधसूत्रम्)

व्याख्याः कटे धातु का अर्थ वर्षा और ढक देना है। इसका एकार इत् है। इसके रूप भी पूर्व धातुओं के समान बनते हैं।

लिट् के कित् वचनों और थल में एत्व और अभ्यास लोप नहीं होता। क्योंकि यहाँ लिट् निमित्तक आदेश होता है। अभ्यास के ककार को ृकुहोश्चुःश्से चवर्ग चकार हुआ।

प्र० चकाट, चकटतुः, चकटुः। म० चकटिथ, चकटथुः चकट। उत्तं चकाट—चकट, चकटिव, चकटिम।

कटिता। अन्य लकारों के रूप पूर्वोक्त साधारण प्रक्रिया से ही बनेंगे।

ह्यन्त-क्षण-श्वस जाग-णि-श्व्येदिताम् 7.2.5

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वद्धिर्नेडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्।

व्याख्याः हकारान्त, मकारान्त और यकारान्त तथा क्षण, श्वस, जाग, ण्यन्त, श्वि, एवं एदित् धातुओं के अच् की वद्धि नहीं हो, इडादि सिच् परे रहते।

इनके उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

हकारान्त—मह पूजायाम्—पूजा करना, अमहीत्।

मकारान्त—क्रमु पादविक्षेपे—चलना, अक्रमीत्।

यकारान्त—हय गतौ—जाना, अहयीत्।

क्षणु हिंसायाम्—हिंसा करना, अक्षणीत्।

श्वस् प्राणने—सांस लेना, जीना, अश्वसीत्

जाग निद्राक्षये—जागना, अजागरीत्।

ण्यन्त—इन धातुओं से पर च्लि को सिच् नहीं होता, अपि तु णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्श्से चङ् आदेश हो जाता है। ऐसी दशा में ण्यन्त से परे सिच् मिलता ही नहीं, फिर सिच् परे रहते निषेध करना व्यर्थ प्रतीत होता है। केवल वेद में इसका उदाहरण है। जब ृनीनयतिध्वनयत्येलयत्यक्ष्यतिभ्यःश सूत्र से चङ का निषेध हो जाता है, तब सिच् होकर इसका उदाहरण बनता है। ऊन परिहाणे—कम होना म भवान् ऊनयीत्।

एतिद्— इसका उदाहरण प्रकृत ृकटेश धातु ही है। यह एदित है। अतः इसके अच् को वद्धि का निषेध होने से ृअकटीत्श रूप सिद्ध होगा।

(टुओ) श्वि गतिवद्ध्योः—चलना और बढ़ना—अश्वयीत।

गुपू रक्षणे 12

व्याख्याः गुपू धातु का अर्थ रक्षा है। इसका ऊकार इत् है।

गुपू-धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः 3.1.28

एभ्यः ृआयश प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे।

व्याख्याः गुपू (रक्षा करना), धूप् (तप्त करना), विच्छ (जाना) और पण् तथा पन् (व्यवहार और स्तुति) धातुओं से आयश्प्रत्यय हो स्वार्थ में।

स्वार्थ में विधान होने से यह स्वार्थिक प्रत्यय है। जो प्रत्यय प्रकृति के अर्थ में कोई विशेषता पैदा नहीं करता उसे स्वार्थिकश कहते हैं। इस ृआयश प्रत्यय से प्रकृति रूप धातुओं के अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

आयश प्रत्यय स्वार्थिक होने से निर्निमित्तक है। अतः यह सब से पहले आयेगा। आयश्प्रत्यय की ृआर्धधातुकं शेषःश्से आर्धधातुक संज्ञा है। अतः उसके परे रहते लघूपध अङ्गगुप के इक् उकार को पुगन्तलघूपधस्य चश्सूत्र से गुण ओकार हुआ तब गोपाय बना।

'आय'श्प्रत्यय अकारान्त है इसका ध्यान रहना चाहिये।

सनाद्यनता घातवः 3.1.32

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः। धातुत्वाल्लडादयः-गोपायति।

व्याख्याः सन्श से लेकर ृकमेर्णिङ्श सूत्र से विहित णिङ्शतक जो बारह प्रत्यय हैं, वे जिनके अन्त में हों, उनकी धातुसंज्ञा हो।

आयश प्रत्यय अन्त में होने से ृगोपायश की धातु संज्ञा हुई।

सन्श आदि बारह निम्नलिखित कारिका में बताये गये हैं—

सन्—क्यच्—काम्यच्—क्यड्—क्यषोथाचारक्विब्—णिज्—यङस्तथा। यगायेयङ् णिङ्चेति द्वादशामी सनादयः। इति।।

ये प्रत्यय भिन्न भिन्न सूत्रों से विहित होते हैं।

धातुत्वादिति— धातु संज्ञा होने से ृलःकर्मणि—श सूत्र से लकारों की उत्पत्ति होती है।

गोपायति—वर्तमान काल में लट् आने पर उसके स्थान में यथाक्रम से तिवादि आदेश होंगे। तदनन्दर कर्तरि शप्श्से शप् होगा। गोपाय अ तिश्इस अवस्था में शप् के अकार गुण परे रहते आयश्प्रत्यय के अन्त्य अकार को अतो गुणे से पररूप एकादेश होकर रूप सिद्ध होता हे।

सभी सार्वधातुक लकारों में इसी प्रकार ृआयश प्रत्यय के अकार का ृशप्श के अकार के साथ पररूप करना चाहिये।

प्र०गोपायति, गोपायतः, गोपायन्ति। म० गोपायसि, गोपायथः, गोपायथ। उ० गोपायामि गोपायावः गोपायामः।

आय्-आदय आर्धधातुके वा 3.1.31

आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः।

व्याख्याः आर्धधातुक प्रत्यय की विवक्षा में धातु से 'आय' आदि प्रत्यय विकल्प से हों।

(वा) कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः। आ कासोराम्विधानान् मस्य नेत्वम्।

व्याख्याः कास् (चमकना) और अनेकाच् धातुओं से आम् प्रत्यय कहना चाहिये।

आस्काससोरिति— आस् और कास् को आम् विधान करने से उसके मकार की इत् संज्ञा नहीं होती।

अर्थात् यदि आम् का मकार इत्संज्ञक हो तो मित् होने से आम अन्त्य अच् के आगे होगा। ऐसी दशा में ृआसश्और कासश्धातु के अन्त्य अच् अकार के आगे आमश्का अकार आयगा और तब सवर्ण दीर्घ किये जाने पर आस्श्और कास्श्जेसे के तैसे रह जायँगे। इस प्रकार आम्श्विधान व्यर्थ होगा। अतः आस्श्और कास्श्धातु को आम् विधान से सूचित होता है कि आम्श्के मकार की इत्संज्ञा नहीं होती। आस्श्धातु को दयायासश्चश्सूत्र से आम्श्होता है।

लिट् लकार की विवक्षा में गुप्श्से आम्श्प्रत्यय विकल्प से होगा। क्योंकि लिट् लकार ृलिट् चश्सूत्र से आर्धधातुक है।

आर्धधातुक की विवक्षा मेंश्कहने से आयश्प्रत्यय सब से पूर्व होता है, तथा विवक्षा करने मात्र से ही हो जाता है। यदि आर्धधातुक परे रहतेश्ऐसा कहा जाता तो लिट्श्आदि होने के बाद ही आयश्हो सकता।

आयश्होने पर गोपाय यह रूप बना। इनकी पूर्ववत् धातुसंज्ञा हुई, यह, अनेकाच् है। अतः लिट् लकार आने पर इसके आगे आम्श्आया। तब गोपाय आम् लिट्श यह स्थिति हुई।

आम्श्भी आर्धधातुकं शेषःश्से तिङ शित् भिन्न होने के कारण आर्धधातुक है।

अतो लोपः 6.4.48

आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके।

(लिङ्लुग्विधिसूत्रम्)

व्याख्याः आर्धधातुक के उपदेश काल में जो अदन्त अङ्ग उसके अवयय अकार का लोप हो आर्धधातुक परे रहते।

लिट् या आम इन आर्धधातुक संज्ञको के उपदेश काल में ृगोपायश यह अदन्त है, अतः ृआम्श आर्धधातुक् परे रहते। इसके अवयव अकार का लोप हुआ। तब 'गोपाय् आम् लिट्' यह स्थिति हुई।

आमः 2.4.81

आमः परस्य लुक्।

व्याख्याः आम्श्से परे लिट्श्का लुक् (लोप) हुआ।

गोपायश्आम् लिट्श्यहाँ आम् से परे लिट्श्का लोप हुआ। तब गोपायाम्श्यह शेष रहा।

कृा् चानुप्रयुज्यते लिटि 3.1.40

आमन्तात् लिट्पराः कृभ्वस्तयोनुप्रयुज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि।

व्याख्याः आमश जिसके अन्त में उससे परे लिट् परक कृ, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग होता है अर्थात् आमन्त के साथ उसके पीछे इसका प्रयोग होता है।

कृा्श यह प्रत्याहार है। इसके अन्दर कृ, भू और अस् धातुएँ आती हैं।

तेषामिति—उन अनुप्रयुक्त ृकृश आदि को द्वित्व आदि कार्य किये जाते हें।

गोपायाम्श से आगे पर्याय से लिट्परक ृकृश आदि का अनुप्रयोग हुआ। उसमें प्रथम ृकृश्के अनुप्रयोग में रूप सिद्ध किये जायँगे, तदनन्तर ृभूश और ृअस्श के अनुप्रयोग में। लिट् को यथाक्रम से तिबादि और उनको णलादि आदेश होंगे।

णल् में गोपायाम् कृ अश्इस दशा में लिटि धातोरनभ्यासस्यश्से द्वित्व हुआ। तब गोपायाम् कृ कृ अश्ऐसी स्थिति हुई।

उरत् 7.4.66

अभ्यास ऋवर्णस्यात् स्यात्। वद्धिः-गोपायाचकार। द्वित्वात् परत्वाद् यणि प्राप्ते-

व्याख्याः अभ्यास के अवयव ऋवर्ण को ृअत्श आदेश हो।

गोपायाचकार—यहाँ पूर्वोक्त स्थिति में उरण्श्रपरः से अकार रपर होता है। अर् करने पर गोपायाम् कर् कृ अश्ऐसी अवस्था हुई। यहाँ हलादिः शेषःश्से रकार का लोप, अत उपधायाःश्से अभ्यास के उत्तर खण्ड के ऋकार को वद्धि और, कुहोश्चुःश्से अभ्यास के कवर्ग ककार को चवर्ग—चकार आदेश, मकार को नश्चपदान्तस्य झलिश्से अनुस्वार और उसको ृअनुस्वारस्य ययि परसवर्णःश से परसवर्ण ाकार होकर गोपायाचकार रूप सिद्ध हुआ।

द्वित्वादिति—द्विवचन में ्अतुस्श आदेश होने पर ्गोपायाम् कृ अतुस्श इस अवस्था में धातु के एकाच् को द्वित्व और ऋकार को यण् प्राप्त हुआ। द्वित्व की अपेक्षा पर होने से ्विप्रतिषेधे परं कार्यम्श से यण् प्रबल होने के कारण प्राप्त होता है उसके प्राप्त होने पर (अग्रिम सूत्र ्द्विर्वचनेचिश से यण् का निषेध हो जाता है)

द्विर्वचनेचि 1.1.50

द्वित्त्वनिमित्तेचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये। गोपायाचक्रुः।

व्याख्याः द्वित्व निमित्तक अच् (अजादि प्रत्यय) परे होने पर अच् के स्थान में आदेश (अजादेश) न हो द्वित्व करना हो तो।

गोपायाचक्रतुः— ्गोपायाम् कृ अतुस्श द्वित्व का निमित्त अजादि प्रत्यय है, क्योंकि लिट् परे रहते द्वित्व होता है और यह लिट् के स्थान में होने से अजादेश है। अतः द्वित्व करने से पहले यहाँ यण् आदेश न होगा। यदि द्वित्व होने के पूर्व यण् आदेश हो जाय तो ऋकार को रकार हो जाने से ्क्र्श बन जायगा, तब यह ्एकाच्श नहीं रहेगा, अच् इस में है ही नहीं। अच्रहित होने से एकाच् नहीं, फिर द्वित्व न हो सकेगा। प्रकृत सूत्र अजादेश की अपेक्षा द्वित्व के पहले विधान की अनुमति देता है। द्वित्व होने के अनन्तर यथा प्राप्त अजादेश हो सकते हैं।

इसीलिये यहाँ द्वित्व होने पर अभ्यास कार्य और अजादेश यण् होंगे। तब रुत्व विर्ग होने पर गोपायाचक्रतुः रूप सिद्ध हो सकते हैं।

गोपायचक्रुः—लिट् के प्रथम पुरुष के बहुवचन—उस्श्में रूप पूर्ववत् सिद्ध होता है।

थल् में यथा प्राप्त सब कार्य होने पर गोपायाचकृ थश्इस दशा में वलादि आर्धधातुक होने से थल् को आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से इट् आगम प्राप्त है।

एकाच उपदेशेनुदात्तात् 7.2.10..

उपदेशे यो धातुरेकाज् अनुदात्तश्चतत आर्धधातुकस्येण् न।

ऊद्-ऋदन्तैर्यौति रु-क्ष्णु-शी-स्नु-नु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः। वङ्-वाभ्यां च विनैकाचोजन्तेषु निहताः स्मताः

कान्तेषु —शक्ल (1) एकः।

चान्तेषु—पच् 1, मुच् 2, रिच् 3, वच् 4, विच् 5, सिच् 6, षट्।

छान्तेषु- पच्छि 1 एकः।

जान्तेषु—त्यज 1, निजिर् 2, भज 3, भज 4, भुज् 5, भ्रस्ज् 6, मस्ज 7, यज् 8, युज् 9, रुजु 1०, रज् 11, विजिर् 12, स्वज् 13, सज 14 स्ज् 15, पचदश।

दान्तेषु-अद् 1, क्षुद् 2, खिद् 2, छिद् 4, तुद् 5, नुद् 6, पद्य 7, भिद् 8, विद्यति 9, विनद् 1०, विन्द् 11, शद् 12, सद् 13, स्विद्य् 14, स्कन्द 15, हद् 16 षोडश।

धान्तेषु—क्रुध् 1, क्षुध् 2, बुध् 3, बन्ध् 4, युध् 5, रुध 6, राध 7, व्यध् 8, शुध् 9, साध् 1०, सिध्य 11 एकादश।

नान्तेषु -मन्य 1, हन् 2 द्वौ।

पान्तेषु-आप् 1, क्षुप् 2, क्षिप् 3, तप् 4, तिप् 5, तप्य 6, दप्य 7, लिप् 8, लुप् 9, वप् 1०, शप् 11, स्वप् 12, सृपः 13 त्रयोदश।

भान्तेषु -यभ् 1 रभ् 2, लभः 3 त्रयः।

मान्तेषु -गम् 1, नम् 2, यम् 3, रम् 4 चत्वारः।

शान्तेषु-कुश् 1 दंश् 2, दिश् 3, दश् 4, मश् 5, रिश् 6, रुश् 7, लिश 8, विश् 9, स्पशः 1० दश।

षान्तेषु-कृष् 1, त्विष 2, तुष् 3, द्विष्, 4, दुष् 5, पुष्य 6, पिष् 7, विष् 8, शिष् 9, शुष् 1० श्लिषः 11 एकादश।

सान्तेषु-घस् 1, वसती 2 द्वौ।

हान्तेषु -दह् 1, दिह् 2, दुह 3, नह 4, मिह 5, रुह 6, लिह 7, वह् 8, अष्टौ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम्।

गोपायाच कर्थ, गोपायाच कथुः, गोपायाच क्र।

गोपायाच कार-गोपायाच कर, गोपायाच कृव, गोपायाच कृम।

गोपायाम्बभूव। गोपायामास।

जुगोप, जुगुपतुः, जुगुपुः।

व्याख्याः उपदेश अवस्था में जो धातु एकाच् और अनुदात्त हों, उससे परे आर्धधातुक को इट् आगम न हों।

गोपायाचकृ थश यहाँ ृकृश धातु है, जो उपदेश अवस्था में एकाच् और अनुदात्त भी है। इसलिये इट् का निषेध हो जायगा।

धातुओं का उपदेश ृधातुपाठश में है। वहाँ देखने से तथा धातुओं के स्वरूप से पता चल जाता है कि वह एकाच् है कि नहीं। पर अनुदात्त मालूम करना कठिन है। क्योंकि ृधातुपाठश में यह तो लिखा नहीं कि यह अनुदात्त है, न कोई अनुदात्त का चिह्न ही है, शायद पहले कोई चिह्न रहा हो। अब तो भाष्यकार आदि पूर्व आचार्यों के कथनानुसार ही निर्णय हो सकता है। उसी के अनुसार यहाँ परिगणन किया गया है।

अनुदात्तेत् ओर अनुदात्त— ये दो भिन्न बातें हैं और दोनों का फल भी भिन्न–भिन्न है। अनुदात्तेत् का फल आत्मनेपद विधान है और अनुदात्त का इट् निषेध। अनुदात्तेत् का निर्देश ृएधादयः कत्थन्ताः षट्त्रिंशत् अनुदात्तेतः—ृएध्श आदि कत्थश पर्यन्त छत्तीस धातुयें अनुदात्तेत् हैं, इत्यादि वचनों के द्वारा धातुपाठ में किया है। यह कोई आवश्यक नहीं कि जो धातु अनुदात्त हो, वह अनुदात्तेत् भी हो। ृशक्लश धातु अनुदात्त है पर अनुदात्तेत नहीं, एक धातु अनुदात्तेत् है पर अनुदात्त नहीं।

मूल में अनुदात्त एकाच् धातुओं की सचूी दी गई है, जिससे ढूँढने का कष्ट न रहे। अजन्तों में अनुदात्त अधिक हैं और उदात्त कर्म। इसलिये उदात्तों को गिनकर बता दिया गया है। उनसे भिन्न अनुदात्त हैं। हलन्तों में अनुदात्त अल्प हैं, उनका स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाता है।

ऊदिति—ऊकारान्त और ऋकारान्त धातु तथा यु आदि बारह 12 धातुओं को छोड़ कर शेष अजन्त एकाच् धातु हैं।

कारिकास्थ ृनिहताश शब्द का अर्थ अनुदात्त है।

यु आदि का अर्थ सहित परिचय नीचे दिया जाता है—

1. यु मिश्रणामिश्रणयोः (अदादि) मिलाना, अलग करना।
2. रु शब्दे (अदादि) मिलाना, अलग करना।
3. क्ष्णु तेजने ,, तेज करना।
4. शीङ् स्वप्ने ,, सोना।
5. स्नु प्रेस्रवणे ,, चूना, गाय आदि का पसमाना।
6. नु स्तुतौ (अदादि) स्तुति करना
7. टुक्षु शब्दे ,, शब्द करना, छींकना।
8. टुओ श्वि गतिवद्ध्योः (भ्वादि) जाना, बढ़ना।
9. डीङ् विहायसा गतौ (दिवादि) उड़ना।
10. श्रिा् सेवायाम् (भ्वादि) सेवा करना, आश्रय लेना।
11. वङ् संभक्तौ (क्र्यादि) सेवा करना।
12. वा् वरणे (स्वादि, चुरादि स्वीकार करना।

हलन्त एकाच् धातुओं का संग्रह–

1 ककरान्त 1 पाके (भ्वादि) पकाना। 2 मोक्षणे (तुदादि)–छोड़ना। 3 विरेचने (रुधादि)–दस्त होना। 4 परिभाषणे (अदादि)–निन्दा करना। 5 पथग्भावे (रुधादि)–अलग होना। 6 क्षरणे (तुदादि)–सींचना, चूना।

1 छकारान्त 1 जीप्सायाम् (तुदादि)–पूछना।

15 जकारान्त 1 हानौ (भ्वादि)–तयागना। 2 शौचपोषणयोः (जुहोत्यादि) –शुद्ध करना, बढ़ाना। 3 सेवायाम (भ्वादि)–सेवा करना। 4 आमर्दने–(रुधादि)–तोड़ना। 5 पालनाभ्यवहारयोः (रुधादि)–पालन करना, खाना। 6 पाके (तुदादि)–भूनना। 7 शुद्धौ (तुदादि)–शुद्ध करना, डुबकी लगाना। 8 देवपूजादिषु (भ्वादि)–यज्ञ करना आदि। 9 योगे (रुधादि)–जोड़ना, समाधौ (दिवादि)–समाधि लगाना। 1० भङ (तुदादि)–तोड़ना, रोगी करना। 11 रागे (दिवादि, भ्वादि)–रंगना, अनुरक्त होना। 12 पथग्भावे (जुहोत्यादि)– अलग होना। 13 परिष्वङ (भ्वादि)–आलिङ करना। 14 सङे (भ्वादि)–मिलना। विसर्गे (दिवादि, तुदादि)–छोड़ना।

16 दकारान्त 1 भक्षणे (अदादि)–खाना। 2 संपेषणे (रुधादि)–पीस देना, कूटना। 3 दैन्ये (दिवादि)–खेद करना। 4 द्वैधीभावे (रुधादि)–टुकड़े करना, काटना। 5 यथने (तुदादि)–पीड़ा पहुँचाना। 6 प्रेरणे (तुदादि)–प्रेरित करना। 7 गतौ (दिवादि)–जाना। 8 विदारणे (रुधादि)–तोड़ना। 9 सत्तायाम् (दिवादि)–होना। 1० विचारणे (तुदादि)–विचार करना। 11 लाभे (तुदादि)–प्राप्त करना। 12 शातने (भ्वादि)–नष्ट होना। 13 विशरणादिषु (भ्वादि)–नष्ट होना, जाना आदि। 14 गात्रप्रक्षरणे (दिवादि)–पसीना होना। 15 गतिशोषणयोः (भ्वादि)–जाना, सुखाना। 16 पुरीषोत्सर्गे (भ्वादि)–मल त्याग करना।

11 धकारान्त 1 क्रोधे (दिवादि)–क्रोध करना। 2 बुभुक्षायाम् (दिवादि)–भूख लगना। 3 अवगमने (दिवादि)–जानना। 4 बन्धने (कूयादि)–बांधना। 5 संप्रहारे (दिवादि)–युद्ध करना। 6 आवरणे (रुधादि)–रोकना। 7 संसिऋद्धौ (दिवादि)–सिद्ध करना। 8 ताडने (तुदादि)–बेधना, मारना। 9 शौचे (दिवादि)–शुद्ध होना। 1० संसिऋद्धौ (दिवादि)–सिद्ध करना। 11 संराद्धौ (दिवादि)–सिद्ध होना।

2 नकारान्त 1 ज्ञाने (दिवादि)–जानना, मानना। 2 हिंसागत्योः (अदादि)–मारना और जाना।

13 पकारान्त 1 व्याप्तौ (स्वादि)–प्राप्त करना। 2 स्पर्शे (तुदादि)–छूना। 3 प्रेरणे (तुदादि)–फेंकना। 4 सन्तापे (भ्वादि)–तपना। 5 क्षरणार्थे (भ्वादि)–चूना, टपकना। 6 प्रीणने (दिवादि)–प्रसन्न करना या होना। 7 दप्तौ (दिवादि)–घंमड में आना। 8 उपदेहे (तुदादि)–लीपना। 9 छेदने (तुदादि)–काटना, लोप करना। 1० बीजसन्ताने (भ्वादि)–बोना। 11 उपालम्भे (भ्वादि)–शाप देना, शपथ लेना। 12 शये (अदादि)–सोना। 13 गतौ (भ्वादि)–चलना, सरकना।

3 भकारान्त 1 मैथुने (भ्वादि)–मैथुन करना। 2 राभस्ये (भ्वादि)–आरम्भ करना, 3 प्राप्तौ (भ्वादि)–प्राप्त करना।

4मकारान्त 1 गतौ (भ्वादि)–जाना। 2 प्रह्वत्वे शब्दे च (भ्वादि)–झुकना, प्रणाम करना और शब्द करना। 3 उपरमे (भ्वादि)–शान्त होना। 4 क्रीडायाम् (भ्वादि)–क्रीड़ा करना, रमण करना।

1० शकारान्त 1 आक्रांशे (भ्वादि)–जोर से रोना चिल्लाना। 2 दशने (भ्वादि)–डँसना। 3 अतिसर्जने (तुदादि)–स्पर्श करना, मालुम करना। 4 प्रेक्षेण (भ्वादि)–देखना। 5 आमर्शने (तुदादि)–स्पर्श करना, मालूम करना। 6–7 हिंसायाम् (तुदादि)–हिंसा करना। 8 अल्पीभावे (तुदादि)–घटना। 9 प्रवेशने (तुदादि, दिवादि)–प्रवेश करना। 1० संस्पर्शे (तुदादि)– स्पर्श करना, छूना।

11पकारान्त 1 विलेखने (भ्वादि तुदादि)–हल जोतना, खींचना। 2 कान्तौ (भ्वादि)–चमकना। 3 तप्तौ (दिवादि)–तप्त होना। 4 अप्रीतौ (अदादि)–द्वेष करना। 5 वैकृत्ये–(द्विवादि)–दूषित होनां 6 पुष्टौ (दिवादि)–पुष्ट होना। 7 संचूर्णने (रुध ादि)–पीसना। 8 सेचने (भ्वादि)–सींचना। विप्रयोगे (क्र्यादि)–अलग होना। व्याप्तौ (जुहोत्वादि)–व्याप्त होना। 9 असर्वोपयोगे (रुधादि)–वच रहना। 1० शोषणे (दिवादि)–सूखना। 11 आलिङने (दिवादि)– आलिङन करना।

2 सकारान्त 1 अदने (भ्वादि)–खाना। 2 निवासे (भ्वादि)–रहना।

8 हकारान्त 1 भत्मोकरणे (भ्वादि)–जलाना। 2 उपचये (अदादि)–वद्धि होना। 3 प्रपूरणे (अदादि)–दुहना। 4 बन्धने (दिवादि)–बाँधना। 5 सेचने (भ्वादि)–7चाटना। 8 प्रापणे (भ्वादि)–ले जाना।

अनुदात्ता इति-हलन्त धातुओं में अनुदात्त ये 1०3 हैं।

इनको अनुदात्त होने से इट् नहीं होता।

गोपायाचकर्थ—लिट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन थल् में ृगोपायाम् चकृ थश इस स्थिति में यहाँ ृकृश धातु अजन्त एकाच् है। ऊद्ऋदन्तैः— इत्यादि कारिका में वर्जित धातुओं में न होने से यह अनुदात्त है। अतः ृएकाच उपदेशेनुदात्तात्श इस सूत्र से इट् का निषेध हो जायगा, तब गुण होकर रूप बनेगा।

गोपायाचकथुः गोपायाचक्र—यहाँ अपित् लिट् होने से अथुस्शऔर अश्के असंयोगात् लिट् कित्शसे कित् होने के कारण गुण निषेध होकर यण् आदेश हुआ।

गोपायाचकार—गोपायाचकर—ये दो रूप उत्तम के णल् के हैं। यह णल् णलुत्तमो वाश से विकल्प से णित् है। णित् पक्ष में ृअचो ञ्णितिश से वद्धि हो जाती है। अभाव पक्ष में गुण।

गोपायाचकृव, गोपायाचकृम— यहाँ इट् का निषेध हुआ है और असंयोगात् लिट् कित्श इस सूत्र से संयोग रहित कृश धातु से पर अपित् लिट होने के कारण वश्और मश्कित् से गुण नहीं हुआ।

गोपायाचकार आदि रूप कृश्धातु के अनुप्रयोग में बने हैं।

गोपायाम्बभूव—आदि रूप भूश्के अनुप्रयोग में बनें। ृगोपायाम्श्के साथ भूश्के लिट् के रूप जोड़ देने मात्र से रूप बन जायँगे।

गोपायामास—अस् के अनुप्रयोग में अस्श्के लिट् के रूप जोड़ देने के रूप बन जायँगे। अस् के रूप अत्श्के समान बनेंगे—

प्र० गोपायामास, गोपायामासतुः, गोपायामासुः।

म० गोपायामासिथ, गोपायामासथुः, गोपायामास।

उ० गोपायामास, गोपायामासिव, गोपायामासिम।

उपर्युक्त ये सभी रूप ृआयश पक्ष में बनते हैं। आगे ृआयश के अभाव पक्ष के रूप दिये जा रहे हैं।

जुगोप— ृआयश के अभाव पक्ष में ृगुप्श को द्वित्व, अभ्यास कार्य हलादिशेष, चुत्व, लघूपध गुण होने पर रूप बनेगा

जुगुपतुः, जुगुपुः—अतुस और उस् के असंयोग से पर होने के कारण ृअसंयोगात् लिट् कित्श सूत्र से कित् होने से गुण निषेध हो जाता है।

स्वरति-सूति-सूयति-धूञ्-ऊदितो वा 7.2.44

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड वा। जुगोपिथ, जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति; गोपिष्यति; गोप्स्यति, गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत् गोपाय्यात्। अगोपायीत्।

व्याख्याः स्व (शब्दोपतापयोः—शब्द करना और दुःख देना, भ्वादि) षूङ् (प्राणिगर्भविमोचने—पैदा करना, अदादि), षूङ् (प्राणि प्रसवे—पैदा करना, दिवादि) धूञ् कम्पने—हिलाना) और ऊदित् (जिनका दीर्घ ऊकार इत् हुआ हो) धातुओं से पर वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से हो।

गुप्श धातु का दीर्घृऊकारश इत् हुआ है। अतः ृऊदित्श होने से इसके आगे वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट होगा।

जुगोपिथ, जुगोप्थ—वलादि आर्धधातुक थल् को विकल्प से इट् हुआ। अतःदो रूप बने, अन्य कार्य साधारण तो होंगे ही।

इसी प्रकार वश्और मश्में भी दो—दो रूप बनते हैं—जुगुपिव, जुगुप्व, जुगुपिम, जुगुप्म।

गोपायिता, गोपिता, गोप्ता— लुट् लकार में ृतास्श प्रत्यय आता है और वह आर्धधातुक है। अतः विकल्प से ृआयश प्रत्यय होगा। ृआयश प्रत्यय होने पर ृगोपायश धातु बनता हैं यह अनेकाच होने से सेट् है। इट् होने पर ृअतो लोपःश से ृआयश के अन्त्य अकार का लोप होकर गोपायिता रूप बनता है। आयश्के अभाव पक्ष में ऊदित होने से इट्

विकल्प के द्वारा गोपिता और गोप्ता ये दो दो रूप बनते हें। इस प्रकार ृआयश और ृइट्श इन दो विकल्पों से तीन रूप बनते हें

इसी प्रकार अन्य आर्धधातुक लकारों में लुट् लकार में ृआयश और ृइट्श दोनों के विकल्प से भी तीन–तीन रूप सिद्ध होंगे। लट् में –गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति।

सार्वधातुक लकारों में अर्थात लोट, लङ् और विधिलिङ् में ृआयश को विकल्प नहीं होता, अतः एक एक ही रूप बनता है।

लोट् में –गोपायतु आदिं लुङ् में –अगोपायत् आदि। विधिलिङ् में –गोपायेत् इत्यादि।

गोपाय्यात्, गुप्यात–आशीर्लिङ् में–यद्यपि यह आर्धधातुक है, तथापि–दो ही रूप बनते हैं। क्योंकि यहाँ यासुट् होता है और वह वलादि नहीं। अतः आय पक्ष में ृअतो लोपःश से आय के अन्त्य अकार का लोप होकर गोपाय्यात् और अभावपक्ष में गुप्यात् रूप बनते हैं। आशीर्लिङ् का यासुट् ृकिदाशिषिश से कित् है अतः गुण निषेध हो जाता है।

अगोपायीत्–लुङ् में ृआयश पक्ष में अगोपायीत आदि रूप बनते हैं। यहाँ भी ृआयश के अन्त्य अकार का लोप हो जाता है। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् होती है।

ृआयश के अभावपक्ष में ृसिच्श को विकल्प से इट् होता है। इट् होने पर ृवदव्रजहलन्तस्याचःश से धातु के अच् उकार को वद्धि प्राप्त होती है।

इसका निषेध अग्रिम सूत्र से हो जाता है।

116 नेटि 7.2.4

इडादौ सिचि हलन्तस्य वद्धिर्न। अगोपीत्। अगौप्सीत्। अगौप्सम्, अगौप्स्व, अगौप्स्म।

व्याख्याः इडादि सिच् परे होने पर हलन्त धातु के अच् को वद्धि न हो।

इससे वद्धि का निषेध होने पर ृपुगन्तलधूपधस्य चश से लधूपध गुण हो जाता है। निम्नलिखित रूप बनते हैं–

प्र० अगोपीत्, अगोपिटाम्, अगोपिषुः।

म० अगोपीः अगोपिष्टम्, अगोपिष्ट।

उ० अगोपिषम्, अगोपिष्व, अगोपिष्म।

अगौप्सीत्–इडभाव पक्ष में–इट् न होने से ृइट ईटिश के द्वारा सिच् का लोप नहीं होता। शेष कार्य पूर्ववत् होते हैं। इट् न होने के कारण इडादि सिच् न मिलने से ही ृनेटिश से वद्धि का निषेध भी नहीं होता।

झलो झलि 8.2.26

झलः परस्य सस्य लोपो झलि। अगौप्ताम्, अगौप्सुः। अगौप्सीः, अगौप्तम्, अगौप्त। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत् अगौप्स्यत्।

व्याख्याः झल् से पर सकार का लोप हो झल् परे होने पर।

अगौप्ताम्–अगौप् स ताम्श इस स्थिति में झल् पकार से पर सकार का झल् तकार परे होने से लोप हो जायगा, तब रूप बना।

अगौप्सुः–बहुवचन में ृसिजभ्यस्तविदिभ्यश्चसे झि को जुस्श्आदेश हो जाने से रूप बनता है।

अगौप्सीः–मध्यम के एकवचन में अट्, सिप्, इकार लोप, ईट्, वद्धि आदि कार्य होकर रूप सिद्ध होता है।

अगौप्तम, अगौप्त–तम्श और ृतश में भी झल परे मिल जाने से सकार का लोप हो जाता है। इस प्रकार ये दो रूप बनते हैं।

मिप् में ृअम्श आदेश हो जाने से अगौप्सम् और वस् मस् में अगौप्स्व, अगौप्स्म रूप बनते हैं

अगोपयिष्यत्–लङ् लकार में आर्धधातुक होने से आय का विकल्प और उदित् होने से इट् का विकल्प होने से तीन–तीन रूप होते हैं।

क्षि क्षये

क्षयति। चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः। एकाचः-श इति निषेधे प्राप्ते-

व्याख्याः क्षि–धातु का अर्थ नाश होनाश्है। यह इकारानत अजन्त धातु है अतः लट् में साधन प्रक्रिया भूश्धातु के समान ही होगी। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ इकार को एश्गुण होकर अय्श्आदेश होगा।

प्र० क्षयति, क्षयतः, क्षयन्ति। म० क्षयसि, क्षयथः, क्षयथ। उ क्षयामि, क्षयावः, क्षयामः।

चिक्षाय—लिट् लकार में प्रथम के एकवचन णल् में धातु को द्वित्व, ृहलादि शेषःश से क्ष के आदि हल् ककार का शेष रहना, उसको चुत्व से चकार अभ्यासोत्तरखण्ड के इकार को ृअचो ञ्णितिश से वद्धि ऐकार और उसको ृआमश आदेश होकर रूप बना।

चिक्षियतुः—अतुस्श में कित् होने से गुण निषेध हो जाने के कारण ृअचिश्नु–धातुभ्रुवा य्वोरियङुवङौश से ृइयङ्श आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

चिक्षियुः—इसी प्रकार ृउस्श में रूप बनता है।

एकाच इति—थल् में ृएकाचश उपदेशेनुदात्तात्श सूत्र से इट् का निषेध प्राप्त होता है। इसके सम्बन्ध में निर्णय आगे किया जाता है।

कृ-स-भ-व-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि 7.2.13

क्रादिभ्य एव लिट इट् न स्यात्, अन्यस्मादनिटोपि स्यात्।

व्याख्याः कृ आदि से ही परे लिट् को इट न हो, इनसे भिन्न धातुओं से चाहे वे अनिट्–अनुदात्त–हों, इट् हो।

यह नियम एकाच् अनुदात्त होने से है। क्योंकि ृएकाच उपदेशेनुदात्तात्श सूत्र से इनको इट् निषेध सिद्ध है; पुनः इस सूत्र से उसका विधान किया गया है। और ृसिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमार्थो भवति–सिद्ध होनेपर भी जिस कार्यका पुनः विधान किया गया है। वह विधान नियमार्थ होता है।श यह वचन नियम करता है कि इन्हीं धातुओं को लिट् में इट् निषेध हो, अन्य को नहीं।

इस नियम के अनुसार ृक्षिश धातु के लिट् को इट प्राप्त हुआ। क्योंकि ृक्षिश धातु ृकृश आदि आठ धातुओं में नहीं है, उनसे भिन्न को लिट् में इट् होता है चाहे वह अनिट् ही क्यों न हो। ृऊद्ऋदन्तैः–श इत्यादि कारिका सेट् अजन्त–धातुओं में न होने के कारण ृक्षिश अनिट् है।

लिट् के थल्, व और म– ये तीन प्रत्यय हैं, जो वलादि होने के कारण इट् होने की योग्यता रखते हें। इन तीनों के लिये ही पूर्वोक्त नियम बना है। इस नियम को क्रासादि नियम कहते हैं। परन्तु थल् के लिए कुछ विशेष नियम हैं, जो आगे के सूत्रों से बनाये जाते हैं।

अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् 7.2.61

उपदेशेजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट्, ततः परस्य थल् इट् (ण्) न।

व्याख्याः उपदेश में अजन्त जो धातु तास् में नित्य अनिट् हो उससे परे ृथल्श को इट् न हो।

पूर्वोक्त क्रादि नियम से प्राप्त इट् का निषेध इस सूत्र से किया जाता है।

ृक्षिश धातु उपदेश में अजन्त भी है और तास् में नित्य अनिट भी है, क्योंकि अनुदात्त होने से ृएकाच उपदेशेनुदात्तात्श सूत्र से इसको निषेध हो जाता है। अतः इससे परे थल् को इट् का निषेध प्राप्त हुआ।

इस सूत्र का पदकृत्य अत्यावश्यक होने से ध्यान देने योग्य है–अजन्त धातु क्यों कहा? इसलिये कि बिभेदिथ में निषेध न हो, यह ृभिद्श धातु का रूप है, ृभिद्श धातु अजन्त नहीं, इसलिये यहाँ निषेध की प्रवत्ति नहीं हुई।

उपदेश– में धातु अजन्त हो–ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि जह्र्थ में भी इट् का निषेध हो, यह ह्रश्धातु का रूप है, गुण होने से अजन्त नहीं रह जाता, परन्तु उपदेश अवस्था में अजन्त है, अतः निषेध प्रवत्त हो जाता है।

नित्य अनिट् हो—यह क्यों कहा? इसलिए कि ृस्वश धातु में निषेध न हो क्योंकि ृवश धातु को ृस्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वाश से विकल्प से इट होता है, अतः नित्य अनिट् न होने से निषेध की प्रवत्ति नहीं होती।

तास् में अनिट् हो—ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि बभूविथ में निषेध न हो क्योंकि ृभूश धातु ृश्र्युकः कितिश और सनिग्रहगुहोश्च से इट् निषेध होने से ृभूत्वाश ओर बुभूषति यहाँ क्त्वा और सन् प्रत्यय में तो अनिट् है पर तास् में नहीं। ृतास्श में तो सेट् ही है, अतः इनको निषेध नहीं हुआ।

तास् में कहने का यह भी फल है कि जघसिथ में निषेध नहीं लगता क्योंकि ृघस्श का तास् में प्रयोग होता ही नहीं, वह तो ृलिट्यन्यतरस्याम्श सूत्र से लिट् में अद् के स्थान में होता है अतः तास् का अभाव होने से तास् में नित्य अनिट् होने की चर्चा इसके सम्बन्ध में नहीं जा सकती।

थल् में क्यों कहा? इसलिये कि चिक्षियिव और चिक्षियम यहाँ निषेध न हो। ये वश्और म के रूप हैं।

उपदेशेत्वतः 7.2.62

उपदेशेकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इट् न स्यात्।

व्याख्याः उपदेश में अकारवान् और तास् में नित्य अनिट धातु से पर थल् को इट् न हो।

इसका उदाहरण—पपक्थ। यह पच् धातु के थल् का रूप है। पच् धातु हलन्त अनुदात्त धातुओं में परिगणित होने से तास् में नित्य अनिट् है और उपदेश में अकारवान् भी है, अतः यहाँ इट् का निषेध हो गया।

इस सूत्र का भी पदकृतीय अत्युपयोगी होने से ध्यान देने योग्य है। उपदेश में अकारवान् हो ऐसा इसलिए कहा गया है कि जहाँ बाद को गुण आदि होकर अकारवान् बना हो, वहाँ निषेध न प्रवत्त हो जैसे—चकर्षिथ। यह कृष बिलेखनेश धातु का रूप है, उपदेश अवस्था में यहाँ ृऋकार है, अकार नहीं, गुण होने पर अवश्य अकार हो जाता है। इसलिए उपदेश में अकारवान् न होने से निषेध की प्रवत्ति नहीं हुई।

अकारवान् इसलिए कहा बिभेदिथ में निषेध हो। यह ृभिद्श धातु का रूप है, भिद् धातु अकारवान् नहीं।

तपर—ह्रस्व अकार कहने से ररोधिथ में निषेध नहीं हुआ। यह राध्श्धातु का रूप है, राध्श्धातु में ह्रस्व अकार नहीं।

तास् में नित्य अनिट् कहने से—जग्रहिथ में निषेध नहीं हुआ। यह ग्रहश्धातु अकारवान् तो है, पर तास् में नित्य अनिट् नहीं। हाँ ृजिघक्षतिश्यहाँ सन् में ृसनि ग्रहगुहोश्चश्से निषेध होने से अनिट् है। चक्रमिथ में भी इसलिए निषेध नहीं हुआ। यह क्रमश्धातु का रूप है और उसको ृस्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्तेश सूत्र से आत्मनेपद तास् में तो निषेध होता है, परस्मैपद में नहीं। अतः यह तास् में नित्य अनिट् नहीं। अतएव इसमें इस निषेध की प्रवत्ति नहीं हुई।

यद्यपि इन सूत्रों का तथा अग्रिम सूत्र का ृक्षिश धातु में उपयोग नहीं, तथापि थल् के इट् निषेध प्रसङ में ये सब कह दिये गये हैं।

ऋतो भारद्वाजस्य 7.2.63

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेड् भारद्वाजस्य मतेन। तेन अन्यस्य स्यादेव।

अयमत्र संग्रहः—

अजन्तोकारवान् वा यस्तास्यनिट्-थलि वेड् अयम। ऋदन्त ईदङ् नित्यानिद्, क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्।

चिक्षयिथ-चिक्षेथ, चिक्षियथुः चिक्षिय। चिक्षाय-चिक्षय, चिक्षियिव, चिक्षियिम। क्षेता। क्षेष्यति। क्षयतु। अक्षयत्। क्षयेत्।

(दीर्घविधिसूत्रम्)

व्याख्याः तास् में नित्य अनिट् ऋदन्त ही धातु से परे थल् को इट् न हो भारद्वाज के मत से।

इसलिए ऋदन्त भिन्न धातु से पर थल् को इट् आगम होगा ही।

पाणिनि मुनि ृअचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्श से सभी अजन्तों को थल् में इट् का निषेध करते हैं, परन्तु भाद्वाज केवल ऋदन्त को ही थल् में इट् का निषेध मानते हैं। पाणिनि ने उनका भी मत आदरार्थ प्रकट किया है। उस समय उन के मत से भी प्रयोग होता रहा होगा।

इस सूत्र के विषय को भारद्वाज–नियम भी कहा जाता है, इन चारों सूत्रों से प्रतिपादित विषय का अत्यावश्यक होने से एक कारिका में संग्रह कर दिया गया है, वह आगे लिखी जाती है।

अयमिति-यहाँ यह संग्रह हुआ।

अजन्त इत्यादि–अजन्त अथवा अकारवान् जो धातु तास् में अनिट् हो, उसको थल् में इट् विकल्प से होता है इस प्रकार –अर्थात् तास् में नित्य अनिट् के ऋकारान्त धातु को थल में इट् का नित्य निषेध होता है।„कृश आदि से भिन्न अनिट् धातु को लिट्–व और म–में इट् हो।

तात्पर्य यह है कि„कृ स भ वश के नियम में उन आठ धातुओं को छोड़कर सभी अनुदात्त–अनिट्–धातुओं को लिट्–थल्, व और म–में इट् सिद्ध होता है। उसमें थल के लिए पुनः विशेष नियम बना है। भारद्वाज ने थल् में केवल ऋदन्त धातुओं को इट् का निषेध किया है। उसके मत से ऋदन्त भिन्न अन्य अजन्त तथा हलन्त धातुओं को क्रादि नियम से इट् सिद्ध है परन्तु पाणिनि सभी अजन्त और हलन्तों में अकारवान् धातुओं को निषेध करते हैं। इस मतभेद के फलरूप में अजन्त–ऋदन्त से भिन्न और हलन्त अकारवान् धातुओं से परे थल् को इट् का विकल्प से होना सिद्ध होता है। ऋदन्त धातु को पाणिनि भी„अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्श सूत्र से अजन्त होने के कारण निषेध करते हैं। इसलिए दोनों का एकमत होने से ऋदन्त धातु से परे थल् को इट् होता ही नहीं–यह फलित होता है। थल के निर्णय के अनन्तर„वश और„मश बच रहते हैं। उनके लिए क्रादि नियम है। उन आठ धातुओं को छोड़कर सभी अनिट् धातुओं का„वश„मश में इट् हो जाता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए–यदि धातु अनेकाच् है, तब वह सेट् है। जैसे–जाग, चकास आदि। इनके विषय में निःशंक इट् कर देना चाहिये। ण्यन्त, सन्नन्त और यङन्त धातु भी अनेकाच् होने से सभी सेट् होते हैं।„सनाद्यन्ता धातवःश से जिनकी धातुसंज्ञा होती है, वे धातु प्रायः –क्विबन्त आदि किसी–किसी को छोड़कर–अनेकाच् बन जाते हैं। अतः वे सभी सेट् है। इनके रूप बनाने में निःशंक इट् कर देना चाहिये।

धातु यदि एकाच् हो तो पहले यह देखना चाहिये कि यह अनुदात्त है कि नहीं? इसका पता„ऊद्ऋ–श आदि संग्रह से चलता है। वहाँ से यह निर्णय करने के बाद–कि यह धातु अनिट है–लिट् का विचार करना चाहियै। अनिट् धातु के ही लिट् में इट् के निर्णय की आवश्यकता पड़ती है। यदि धातु„कृश आदि आठ धातुओं में हो तो उनकी सभी रूपों में लिट् में इट् का निषेध समझना चाहिये यदि इनसे भिन्न हो तो व और म में इट् कर देना चाहिये। थल् में–यदि ऋकारानत धातु हो तो इट् न करना चाहिये, यदि अजन्त अथवा अकारवान् हो तो विकल्प से करना चाहिये, इनसे भिन्न हो तो नित्य करना चाहिये।
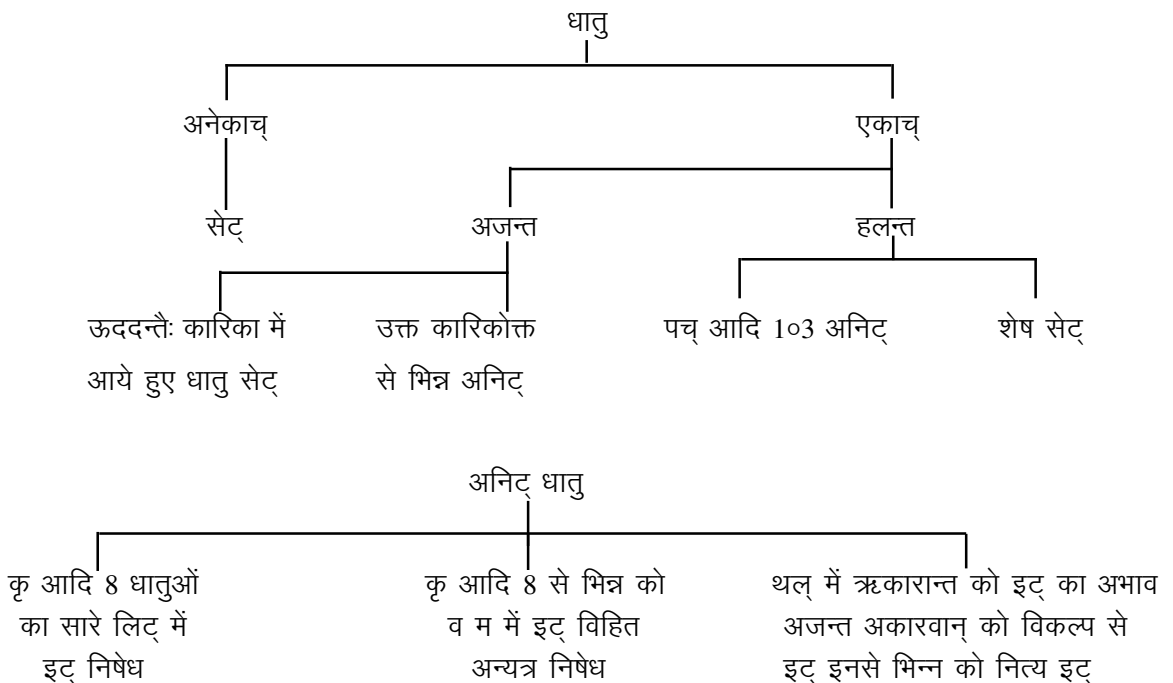
प्रकृत ृक्षिश धातु अनिट् और अजन्त है। इसलिये इससे परे थल् को भारद्वाज नियम से विकल्प से इट् होता है और व तथा म को क्रादि नियम से नित्य होता है, क्योंकि ृकृश आदियों में यह नहीं आया है।

चिक्षयिथ, चिक्षेथ—सिप् के स्थान में थल् होता है। तास् में नित्य अनिट् होते हुए अजन्त होने से संग्रह कारिका में बताये प्रकार से थल् को विकल्प से इट आगम होता है अतः स्थानिवद्भाव से थल पित् है। एवं अपित् न होने से असंयोगल्लिट् कित्श से कित् नहीं होता। तब आर्धधातुक गुण हो जाता है। इट् पक्ष में अच् परे होने से गुण एकार को अय् आदेश होता है। इडभावपक्ष में वैसे ही रहता है।

चिक्षियथुः—ृअथुस्श में गुण नहीं होता, अपितु ृइयङ्श होता है। क्योंकि ृअथुस्श अपित् लिट् होने से कित् है, उसके कारण गुण—निषेध हो जाता है।

इसी प्रकार अश्वश्और मश्में भी गुण नहीं, इयङ् होता है।

क्षेता—लुट् में तास् आने पर प्राप्त इट् का अनुदात्त होने से ृएकाच उपदेशेनुदात्तात्श से निषेध हो जाता है। तब आर्धधातुक गुण होकर क्षेता आदि रूप बनते हैं।

क्षेष्यति—लट् में भी ृस्यश आने पर पूर्ववत् इट ् का निषेध और गुण होने पर रूप बनता है।

लोट् लङ् और विधिलिङ् में शप् आने से पित् सार्वधातुक निमित्त गुण होकर रूप सिद्ध होते हैं।

अ-कृत्-सार्वधातुकयोः 7.4.25

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये, न तु कृत्सार्वधातुकयोः। क्षीयात्।

व्याख्याः अजन्त अङ की दीर्घ हो यकरादि प्रत्यय परे रहते, परन्तु कृत् और सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो न हो।

क्षीयात्—ृक्षि यात्श यहाँ आशीर्लिङ् में यकारादि यासुट् प्रत्यय परे होने से दीर्घ होकर रूप सिद्ध होता है। लिङाशिषिश से आशीर्लिङ् आर्धधातुक है, सार्वधातुक नहीं।

कृत् और सार्वधातुक प्रत्यय में निषेध करने से ृसंचित्यश और ृचिनुयात्शआदि स्थलों में दीर्घ नहीं हुआ। संचित्य यहाँ ल्यप् प्रत्यय हुआ है, वह यकारादि है पर कृत् है। अन्यथा यकारादि प्रत्यय पर होने से दीर्घ ही जाता, तब ृह्रस्वस्य पिति कृति तुक्श से ह्रस्वनिमित्तक तुक् आगम न हो सकता। ृचिनुयात्श में यकारादि यासुट् प्रत्यय है, पर यह सार्वधातुक है। विधिलिङ् में सामान्य —नियम से लिङ् सार्वधातुक होता है।

सिचि वद्धिः परस्मैपदेषु 7.1.9

इगन्ताङ्गस्य वद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि। अक्षैषीत्। अक्षेष्यत्।

व्याख्याः इगन्त अङ को वद्धि हो परस्मैपद के सिच् पर रहने पर।

अलोन्त्य परिभाषा के बल से वद्धि अङ्ग के अन्त्य इक की ही होगी।

अक्षैषीत—क्षिश्धातु के इगन्त अङ्गहोने से उसके इक् को प्रकृत सूत्र से वद्धि हो जाती है। तब यह रूप सिद्ध होता है।

प्र० अक्षैषीत्, अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः म० अक्षैषीः अक्षैष्टम् अक्षैष्ट। उ० अक्षैषम्, अक्षैष्व, अक्षैष्म।

अक्षेष्यत्—लङ् में गुण होकर अक्षेष्यत् आदि रूप बनते हैं

तप सन्तापे

तपति। तताप, तेपतुः तेपुः। तेपिथ, ततप्थ। तप्ता। तप्स्यति। तपतु। अतपत्। तपेत्। तप्यात्। अताप्सीत्। अतप्स्यत्।

व्याख्याः तप इति—तप् धातु का अर्थ सन्तप्त होना—जलना—है।

तपति—लट् के प्रथम पुरुष के एकवचन में ृतप्+तिश इस दशा में शप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

तताप—लिट् के प्रथम पुरुष के एकवचन में तिप् को णल् आदेश होने पर ृतप् अश इस दशा में धातु के एकाच को द्वित्व अभ्यासकार्य और उत्तरखण्ड को ृअत उपधायाःश से उपधा दीर्घ होने से रूप सिद्ध होता है।

तेपतुः—इसके कित् लिट् में ृअत एक हल्मध्येनादेशादेर्लिटिश सूत्र से अकार को एवं आदेश और अभ्यास का लोप होने पर रूप सिद्ध होगा।

तेपिथ ततथ्—इसी प्रकार थल् में भी इट् पक्ष में ृथलि च सेटिश से पूर्वोक्त कार्य होते हैं। इसको तास् में नित्य अनिट और अकारवान् होने से थल् में वैकल्पिक इट् होता है। जब इट् होता है तब सेट थल परे होने से अकार को एकार और अभ्यास का लोप होकर तेपिथ रूप बनता है। जब इट् नहीं होता, तब—ततथ्थ रूप होता है।

तप्ता आदि—अन्य लकारों के रूपों में कोई विशेष कार्य नहीं होते।

अताप्सीत्—लुङ् प्रथम पुरुष के एकवचन में लुङ् लकार को तिप् आदेश और उसके इकार के लोप होने पर ृअतप् त्श इस दशा में च्लि, च्लि को सिच्, इच् की इत्संज्ञा लोप, अपक्त तकार को इट् आगम होने पर वदव्रजहलन्तस्याचः से धातु के अङ्गअकार को वद्धि होकर अताप्सीत् आदि रूप बनते हैं।

क्रमु पाद विक्षेपे. 124

(श्यन्प्रत्ययविधिसूत्रम्)

क्रम धातु का अर्थ ृचलनाश है।

वा भ्राश-भ्लाश-भ्रमु-क्रमु-क्लमु-त्रसि-त्रुटि-लषः 3.1.70

एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुकं परे। पक्षे-शप्।

(दीर्घविधिसूत्रम्)

व्याख्याः भ्राश्(चमकना) ,भ्लाश् (चमकना) ,भ्रम् (घूमना), क्रम् (चलना), क्लम् (खिन्न होना), त्रस् (डरना), त्रुट् (टुटना) और लष् (इच्छा करना) इन धातुओं से श्यन प्रत्यय हो कर्त्रर्थ (कर्तवाच्य) सार्वधातुक परे रहते विकल्प से।

श्यन् का यकार बचता है। शित् होने से यह भी सार्वधातुक है।

क्षे शबिति—पक्ष में शप्श्होगा। ये सब दिवादिगण की धातुयें हैं। इनका श्यन् का विधान किया गया है। और विकल्प से विधान के कारण सार्वधातुक लकारों में दो रूप बनते हैं।

क्रमः परस्मैपदेषु 7.3.76

क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति। क्राम्यति, क्रामति। चक्राम। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रामत्। क्राम्येत् क्रामेत्। क्रम्यात्। अक्रमीत्। अक्रामिष्यत्।

व्याख्याः क्रमश धातु के अच् को दीर्घ हो परस्मेपद शित् प्रत्यय पर होने पर।

अच् ही दीर्घ होताहै। अतः यहाँ अच् अकार को ही दीर्घ होगा।

क्राम्यति, क्रामति—श्यन् और शप् दोनों शित् हैं, अतः दोनों स्थलों में दीर्घ होने से रूप सिद्ध हुए हैं।

परस्मैपद पर रहते विधान होने से आत्मनेपद में दीर्घ नहीं होता। अतः आत्मनेपद में क्रमते रूप बनता है। क्रम धातु यहाँ तो परस्मैपदी बताई गई है, पर अकर्मक होने में ृअकर्मकाच्चश सूत्र से और प्र तथा उप उपसर्ग के योग में ृप्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् सूत्र से आत्मनेपदी हो जाता है। और भी कुछ स्थल हैं जहाँ क्रम धातु आत्मनेदी हो जाता है। उन सब स्थलों में दीर्घ नहीं होगा।

लिट् में—प्र० चक्राम—चक्रमतुः, चक्रमुः, | म० चक्रमिथ, चक्रमथुः, चक्रम। उ० चक्राम—चक्रम, चक्रमिव, चक्रमिम।

अक्रमीत्—लुङ् में मान्त होने से हलन्तलक्षण वद्धि का ृह्ययन्तक्षणश्व सजागणिश्व्येदिताम्श इस सूत्र से निषेध होकर अक्रमीत् आदि रूप बनते हैं।

उपसर्ग के योग में —

प्रक्रमते—आरम्भ करता है। प्रक्रामति—जाता है।

उपक्रमते आरम्भ करता है। संक्रामति—संक्रमण करता है।

आक्रमते–प्रकाश निकलता है। आक्रामति–धूम आदि निकलता है। आक्रमण करता है।

विक्रमते–शक्ति प्रकट करता है। विक्रामति–फटता है।

पराक्रमति–पराक्रम करता है।

पा पाने

पा धातु का अर्थ पीना है।

पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दशि-अर्ति-सर्ति-शद-सदां पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ मन यच्छ-पश्य-ऋच्छ-धौ-शीय-सीदाः 7.3.78

पादीनां पिबादय स्युरित्संज्ञकशादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोदन्तः, तेन न गुणः-पिबति।

व्याख्या5 पाश आदि धातुओं को ृपिबश आदि आदेश (क्रम से) हों, शित् प्रत्यय परे रहने पर।–

ये आदेश निम्नलिखित प्रकार से होंगे–

धातु	आदेश	अर्थ	धातु	आदेश	अर्थ
पा	पिब	पीना।	दाण्	यच्छ	देना
घ्रा	जिघ्	सूघना।	दृश्	पश्य	देखना
ध्मा	धम	फूँकना, शंख। का बजना।	ऋ स	ऋच्छ धौ	जाना दौड़ना
स्था	तिष्ठ	ठहरना, रहना।	शद	शीय	नष्ट होना
म्ना	मन	अभ्यास करना।	सद	सीद	जाना या नष्ट होना

पिबादेश इति–पिब आदेश अकारान्त है, अतः पूर्व वर्ण होने से वकार की उपधा संज्ञा होगी, इकार की नहीं अतः उपधा न होने से इकार को ृपुगन्तलघूपधस्य चश से लघूपध गुण नहीं होता।

पिबति–पाश को इस सूत्र से अदन्त पिब आदेश होने पर उसके अकार तथा शप् के अकार का साथृअतो गुणोश से पररूप एकादेश होकर रूप सिद्ध होता हे।

पिबन्तिश में ृपिबश के अकार और शप् के अकार को पहले पररूप होगा। उसके अनन्तर अन्ति के अकार के साथ पररूप होता है।

प्र० पिबति, पिबतः, पिबन्ति। म० पिबसि, पिबथः, पिबथ। उ० पिबामि, पिबावः, पिबामः।

आत और णलः 7.1.34

आदन्ताद् धातोर्णल औकारादेश स्यात्। पपौ।।

व्याख्याः आकारान्त धातु से परे णल् के स्थान में औकार आदेश हो।

पपौ–ृपाश के आकारान्त होने से णल् को ृऔश आदेश हो जायगा। पा+औ यह स्थिति होने पर द्वित्व, अभ्यास कार्य ह्रस्व होकर ृपपा औरश इस स्थिति में आकार और औकार को सामान्य वद्धि एकादेश हाने पर पपौ रूप की सिद्धि हुई। पपा+अतुस् होने पर –

आतो लोप इटि च 6.4.64

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः। पपतुः पपुः। पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप। पपौ, पपिव, पपिम। पाता। पायति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत।

व्याख्याः आर्धधातुक अजादि कित् डित् प्रत्यय और इट् आगम परे होने पर धातु के अवयव आकार का लोप हो।

आर्धधातुक का अन्वय इट् के साथ भी है। आर्धधातुक को आगम होने से ृयदागमा तद्गुणीभूताः तद्ग्रहणेन् गह्यन्ते–जिसको आगम हो वह आगम उसी का अङ्गबन जाता है और उसके ग्रहण से आगम का भी ग्रहण होता हैश इस परिभाषा के अनुसार इट् भी आर्धधातुक है।

पपतुः–अपित् लिट् होने से ृअतुस्श् ृअसंयोगल्लिट् कित्श से कित् होता है और वह अजादि भी है। अतः उसके परे रहते धातु के अवयव आकार का लोप हो जाता है। इस प्रकार पप् + अतुस् पपतुः रूप बना।

पपुः–इसी प्रकार ृउस्श में भी आकार का लोप होकर पपुः बना।

थल् व और म में इट् होने से लोप होता है। थल् में इट् विकल्प से होता है, क्योंकि यह अजन्त अनिट् धातु है। इट् पक्ष में आकार का लोप होकर पपिथ और अभावपक्ष में पपाथ रूप बनता है।

पाता लुट्, पास्यति लट्, पिबतु लोट्, और अपिबत् लङ्, पिबेत् विधिलिंङ् में प्रथम के एकवचन के रूप हैं। इनकी सिद्धि में कोई विशेष कार्य नहीं। इसी प्रकार अन्य वचनों ओर मध्यम तथा उत्तम पुरुष के रूप बनते हैं।

एर्लिङि 6.4.11०

घुसंज्ञकाना मा-स्थादीनां च एत्वं स्यात, आर्धधातुके किति लिङि। पेयात्।

ृगातिस्था-श इति सिचो लुक्-अपात्, अपाताम्।

व्याख्याः घुसज्ञक, मा, स्था, गा, पा, हा और सन् धातु को एत्व हो। घु मा आदि की अनुवत्ति।

घु–मा स्था–गा–पा जहाति–सां हलिश्सूत्र से आई है।

घुसंज्ञक धातु पीछे ृ455 नेर्गद –नद–पत–पद–घु–श इस सूत्र की टीका और टिप्पणी में बताये जा चुके हें।

अलोन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् को एकार होगा।

पेयात्–आशीर्लिङ् के स्थान में हुए आदेश तिङ् आर्धधातुक होते हैं और यासुट् आगम ृकिदाशिपिश से कित् है। आदेश के द्वारा लिङ् कित् है। इस प्रकार आर्धधातुक कित् लिङ् परे होने से धातु के आकार को एकार होकर पेयात् रूप बनता है।

प्र० पेयात्, पेयास्ताम्, पेयासुः। म० पेयाः, पेयास्तम्, पेयास्त। उ० पेयासम्, पेयास्व, पेयास्म।

गातिस्थेति–लुङ् लकार में ृ441 गाति–स्था–घु–पा–भूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु 2।4।77।श से सिच् का लोप हो जाता है। अतः–अपात्, अपाताम् रूप बनते हैं।

आतः 3. 4.110

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्।

व्याख्याः सिच् का लोप जहाँ हुआ हो, वहाँ आदत धातु से परे ही ृझिश को जुस् हो।

'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' सूत्र से झि को नित्य जुस् प्राप्त है। इस सूत्र के द्वारा यहाँ नियम बनाया गया है कि सिच् लोप होने पर आकारान्त धातु से परे ही झि को जुस् हो । लोप होने पर भी सिच् स्थानिवद्भाव से रहता है।

पा धातु से परे ृझिश को जुस् होने पर ृअपा उस्श यह स्थिति बनी।

उसि-अपदान्तात् 6.1.16

अपदान्ताकाराद् उसि पररूपमेकादेशः। अपुः। अपास्यत्।

व्याख्याः अपदान्त अवर्ण से परे उस् हो तो पूर्व पर दोनों के स्थान में पररूप एकादेश हो।

अपुः–अपा+ उस् इस स्थिति में ृउस्श के अच् ृउकारश के साथ आकार का पररूप होता है। अतः आकार और उस् के उकार के स्थान में पर उकार का पररूप एकादेश होने से रूप बनता है।

ग्लै हर्षक्षय

ग्लायति।

(आत्वविधिसूत्रम्)

ग्लैश का अर्थ है ृहर्ष का नाश होनाश अर्थात दुःखी होना।

ग्लायति–लट् को तिबादि आदेश होने पर शप् होगा और उसके अकार के परे रहते ऐकार को ृआय्श आवेश होकर रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार लट् के अन्य रूप भी बनते हैं। लिट् लकार में ग्लै+णल्

आद् एच उपदेशेशिति 6.4.45..

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वम्, न तु शिति। जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्।

व्याख्याः उपदेश में एजन्त धातु को आत्व हो, परन्तु शित् प्रत्यय परे रहते न हो।

अलोन्त्यश परिभाषा से धातु के अन्त्य एच् को ही आत्व होता है।

ग्लैश धातु उपदेश अवस्था में एजन्त है, इसके ृऐश कार को आत्व होता है।, लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में शप् होने से यह नहीं होता। शेष शिद् भिन्न स्थलों में होता है। लिट् में शप् होता नहीं, अतः आत्व हो जाता है। आत्व होने पर धातु आकारान्त बन जाता है, तब आकारान्त ृपा पानेश धातु के समान ही रूप बनते हैं।

जग्लौ–आत्व, णल् को औ आदेश, द्वित्व, अभ्यासकार्य और वद्धि करने से रूप सिद्ध हुआ।

प्र० जग्लौ, जग्लतुः जग्लुः। म० जग्लिथ–जग्लाथ, जग्लथुः जग्ल। उ० जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम।

लुट् में–ग्लाता, लट् में–ग्लास्यति, लोट् में –ग्लायतु, लङ् में–अग्लायत् और विधिलिङ् में–ग्लायेत् रूप बनते हैं। आशीर्लिङ में–

वान्यस्य संयोगादेः 6.4.68

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धाधातुके किति लिङि। ग्लेयात ग्लायात्।

(इट्–सक् विधिसूत्रम्)

व्याख्याः आर्धधातुक कित् लिङ् परे होने पर घुमास्था आदि से भिन्न संयोगादि धातु के आकार को एकार विकल्प से हो।

ग्लेयात्, ग्लायात्–ृग्लैश धातु पूर्वोक्त घु–मा–स्था आदि से भिन्न है और संयोगादि भी है, अतः आशीर्लिङ् आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते एत्व विकल्प होकर ृग्लेयात्श और ृग्लायात्श ये दो रूप बनते हैं।

यम-रम-नम-आतां सक् च 7.2.73

एषां सक् स्याद् एभ्यः सिच् इट् स्यात् परस्मैपदेषु अग्लासीत्। अग्लास्यत्।

व्याख्याः यम् (निवत्त होना), रम् (क्रीड़ा करना, रमण करना), नम् (नम्र होना, प्रणाम करना) और आकारान्त धातुओं को सक् आगम हो तथा इनसे पर सिच् को इट् हो परस्मैपद में।

सक् में केवल ृसश शेष रहता है और यह धातु को होता है, अतएव धातु का अवयव बनता है। इट् सिच् को होता है।

अग्लासीत्–ृग्लैश को ृआदेच उपदेशेशितिश से लुङ् में आकार अन्तादेश होकर ृग्लाश आकारान्त बन जाता है। अतः अ ग्ला स् ई त् इस अवस्था में प्रकृत सूत्र से धातुको सक् और सिच् को इट् आगम हो जाते हें। तब ृअग्ला स् इ स् ई त् यह दशा होती है। इसमें ृइट ईटिश से सिच् का लोप होकर सवर्ण दीर्घ करने पर ृअग्लासीत्श रूप सिद्ध होता है।

यद्यपि इट् करने से सिच् का लोप हो जाता है और पुनः सक् करके ृ'स'शलाकर ृअग्लासीत्श रूप बनाया गया है।

ऐसी प्रक्रिया में गौरव मालूम पड़ता है। उसकी अपेक्षा इस सूत्र को न लगाकर इट् के अभाव होने पर सिच् का लोप न कर॒सश रहने देकर रूप सिद्ध करने में लाघव है। तथापि॒अग्लासिष्टाम्श आदि में सिच् और सक् दोनों का श्रवण रहता है—वहाँ यह विधि चरितार्थ है। उन स्थलों के लिये आवश्यक होने से यहाँ भी प्राप्ति होने से यह सूत्र प्रवत्त हो जाता है।

ग्लैश धातु अनिट् है, इसलिये सिच् को इट् प्राप्त नहीं था।

द्विवचन ताम् में सिच् होने पर॒अग्ला स् तामश इस दशा में सक् और सिच् को इट् आगम होने से॒अग्लास् इ स् ताम्' यह स्थिति बनती है। इसमें प्रत्यय सिच् के सकार को इण् इट् के इकार से परे होने के कारण मूर्धन्य षकार होने पर ष्टुत्व से तकार को टकार होकर॒अग्लासिष्टाम्श रूप बनता है।

बहुवचन में॒झिश को॒जुस्श होकर पूर्ववत् सारे काम करने पर अग्लासिषुः रूप बनता है।

इसी प्रकार—म० अग्लासीः, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट।

उ० अग्लासिषम, अग्लासिष्व, अग्लासिष्म। ये रूप बनते हें।

अग्लास्यत्—लङ् के प्रथम पुरुष के एकवचन में अट्, लकार को तिप्, पकार का लोप, इकार का लोप और स्य प्रत्यय होने पर॒आदेच उपदेशेशितिश सूत्र से धातु के एच ऐकार को आकार आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

ह्व कौटिल्ये

ह्वरति।

व्याख्याः ह्व धातु का अर्थ है कुटिल आचरण करना।

ह्वरति—लट् में तिप् शप् और सार्वधातुक गुण करने पर॒ह्वरतिश रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य रूप बनते है। लिट्, परे होने पर—

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः 7.4.10

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि।

पधाया वद्धिः-जह्वार, जह्वरतुः, जह्वरुः। जह्वर्थ, जह्वरथुः, जह्वर। जह्वार-जह्वर, जह्वरिव, जह्वरिम। ह्वर्ता।

व्याख्याः ऋदन्त संयोगादि अङ को गुण हो लिट् परे होने पर।

अलोन्त्यश परिभाषा से गुण अन्त्य अच् को होता है।

जह्वार—ह्व धातु के लिट् में इस सूत्र से गुण होगा। क्योंकि यह ऋदन्त भी है और संयोगादि भी। प्रथम के एकवचन में तिप्, उसको णल आदेश, णित् होने से अचो ञ्णितिश्से ऋकार को वद्धि प्राप्त होती है, उसको बाधकर पर होने के कारण पहले इस सूत्र से गुण होगा। तब॒जह्वर् अश्ऐसी स्थिति बनने पर॒अत उपधायाःश्से उपधा अकार को आकार वद्धि होकर॒जह्वारश रूप बनता है।

यद्यपि पहले ही ऋकार को आर् वद्धि कर देने से भी यह रूप सिद्ध हो सकता है, पहले गुण की प्रवत्ति होगी। इसका फल कित् लिट् में भी है। अतः

जह्वरतुः—यहाँ अतुस् अपित् लिट् होने से कित् है। अतः आर्धधातुक गुण का निषेध यहाँ हो जाता है। ऐसी दशा में यह सूत्र गुण करता है।

जह्वर्थ—यहाँ यद्यपि थल् के पित् होने से कित् न होने के कारण आर्धधातुक गुण करने से रूप सिद्ध हो जाता है, तथापि पर होने से इसी सूत्र के द्वारा गुण होता है। इस प्रकार यह रूप सिद्ध होता है।

ऋदन्त ईदङ् नित्यानिट्श के अनुसार ऋदन्त होने से इसके थल् को इट् नहीं होता। पाणिनि के मत में अजन्त होने से॒अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्श से और भारद्वाज के मत से ऋदन्त होने के कारण॒ऋतो भारद्वाजस्यश से इट निषेध हो जाता है।

जह्वरिव, जह्वरिम—वश और ृमश में क्रादि नियम से इट् प्रकृत सूत्र से ऋकार को गुण अर् आदेश होकर ृजह्वरिवश और जह्वरिम रूप सिद्ध होते हें।

ह्वर्ता—आदि रूप लुट् में बनते हैं। ह्व अजन्त धातु है, अजन्त सेट् संग्रहकारिका ऊद्ऋदन्तैः—में ग्रहण न होने से यह अनुदात्त है, अतः इसके आगे वलादि आर्धधातुक को इट् नहीं होता तब आर्धधातुक गुण होकर रूप सिद्धि होती है।

ऋद्धनोः स्ये 7.2.70

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्। 141

व्याख्याः ह्रस्व ऋकारान्त और हन् धतु से परे स्यश्को इट् हो।

ह्रस्व ऋकारान्त धातु ृऊद्ऋदन्तै— कारिका में परिगणित न होने से और ृहन्श भी हलन्त अनुदात्तों में पाठ होने से अनिट हैं। उन्हें ृस्यश में विशेष रूप से इस सूत्र से इट् विधान किया गया है।

ह्वरिष्यति—ृह्वश धातु ऋकारान्त है। अतः इससे पर ृस्यश को इट् बनते हैं।

हन् का उदाहरण हनिष्यति अदादि गण में आयगा।

ह्वरतु, अह्वरत्, ह्वरेत्—लोट्, लङ् और विधिलिङ् के रूप यथा पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध होते हैं। आशीर्लिङ् में—

गुणोर्ति-संयोगाद्योः 7.4.29

अर्तेः संयोगादेऋदन्तस्य च गुणः स्यात्, यकि यादावार्धधातुके लिङि च ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्।

व्याख्याः ऋ (जाना आदि) और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण हो, यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते।

अलोन्त्यपरिभाषा के बल से गुण अन्त्य ऋकार को होता है। यक् और यकारादि अर्धधातुक लिङ् के कित् होने से निषेध हो जाने के कारण यहाँ गुण प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र से विधान किया गया।

आशीर्लिङ् आर्धधातुक लिङ् है, क्योंकि उसके स्थान में हुए तिङ् आदेशों की ृलिङाशिषिश से आर्धधातुक संज्ञा है, आदेश के द्वारा लिङ् भी आर्धधातुक कहा जाता है।

ह्वर्यात्—ृह्व+यात्श इस अवस्था में ऋ को गुण होकर ह्वर्यात् रूप बना।

ऋश का उदाहरण—अयात् आगे जुहोत्यादि गण में मिलेगा।

अह्वार्षीत्—लुङ् लकार में अट्, तिप्, इकार लोप, सिच्, अपक्त तकार को ईट आगम होने पर धातु के ऋकार को ृसिचि वद्धिः परस्मैपदेषुश्से हलनत लक्षण वद्धि ृआर्श होकर रूप सिद्ध होता है। वद्धि होने पर इण् रकार से पर प्रत्यय के अवयव सकार को ृआदेशप्रत्यययोःश से मूर्धन्य षकार हुआ।

अह्वरिष्यत्—लङ् में ृस्यश को ृऋद्धनोः स्येश से इट् होकर रूप बना।

श्रु श्रवणे

व्याख्याः श्रु धातु का अर्थ सुनना है।

श्रुवः श च 3.1.74

श्रुवः 'श्' इत्यादेशः स्यात्, 'श्नु' प्रत्ययश्च। शृणोति,

व्याख्याः श्रुधातु को श्र आदेशहो औरृश्नुश्प्रत्यय भी।

श्नुश्का श्श्इत्संज्ञक है, अतः शित् होने से यह सार्वधातुक है।

यह श्नुश्प्रत्यय ृशप्श का अपवाद है, अतः इसकी प्रवत्ति शप् के विषय कर्त्रर्थ सार्वधातुक में ही होती है। अतः लुट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में ही ृश्नुश प्रत्यय और श्र नु तिश यह स्थिति हुई। यहाँ तिप् सार्वधातुक के परे होने से नुश के उकार को अङ्ग के अन्त्य होने से सार्वधातुकर्धधातुकयोः, से गुण ओकार हुआ। तब ृऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्श से नकार को णकार होकर रूप सिद्ध हआ।

यहाँ ृश्नुश प्रत्यय के अपित् होने के कारण ृसार्वधातुकमपित्श सूत्र से ङिद्वत् होने से उसको निमित्त मानकर ृश्रश के ऋकार को गुण नहीं होता।

सार्वधातुकमपित् 1.2.4

अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत्। श्रृणुतः।

व्याख्याः अपित् सार्वधतुक ङित् के समान होता है अर्थात् ङित् को निमित्त मानकर जो गुण–वद्धि निषेध आदि कार्य होते हैं, वे इनमें भी होते हैं।

श्रृणुतः–तस् में पूर्ववत् श्नु प्रत्यय और ृश्रश आदेश होने पर णत्व होकर रूप सिद्ध होता है।

यहाँ नुश्के उकार को तस् सार्वधातुक निमित्तक गुण प्राप्त होता है।

तस्श अपित् सार्वधातुक है अतः इसको ङिद्वद्भाव हो जाता है। तब गुण का निषेध होता है।

हु-श्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87

हुश्नुवोरनेकाचोसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके। श्रृण्वन्ति। श्रृणोषि, श्रृणुथः, श्रृणुथ। श्रृणोमि।

व्याख्याः हु[1] धातु तथा अनेकाच् श्नु–प्रत्ययान्त अङ्गके असंयोगपूर्व उवर्ण को यण् आदेश हो अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते।

यह उवङ्श्का अपवाद है। ृआप्नुवन्तिश आदि में संयोगपूर्व श्नु के उकार को यण् का निषेध करने से उवङ् भी चरितार्थ हो जाता है।

श्रृण्वन्ति–यहाँ ृश्र णु + अन्तिश इस स्थिति में अपित् सार्वधातुक होने के कारण ृअन्तिश को ङिद्वद्भाव हो जाता है। अतः प्राप्त सार्वधतुक गुण का निषेध होता है। तब ृअचि श्नु धातुभ्रुवा य्वोरियङुवङौश से श्नु के उकार को उवङ् आदेश प्राप्त होता है। उसका बाध प्रकृत यण् विधि से होता है क्योंकि यहाँ श्नुप्रत्ययान्त अनेकाच् अङ्ग श्रृणुश है, उसका उकार असंयोपूर्व भी है। अतः प्रकृत सूत्र से यण् होकर रूप सिद्ध होता है।

हुश के उकार को यण् आदेश का उदाहरण ृजुह्वतिश इत्यादि जुहोत्यादि गण में मिलेंगे।

श्रृणोषि–में श्रृणोति के समान सारे कार्य होते हैं। षकार यहाँ विशेष है।

श्रृणुथः, श्रृणुथ–ृथस्श और ृथश के अपित् सार्वधातुक होने के कारण ङिद्वत् होने से 'श्नु' के उकार को गुण नहीं होता है।

श्रृणोमि–श्रृणोति के समान सिद्ध होता है।

'वस्' और 'मस्' में श्नु प्रत्यय और श्र आदेश तथा णत्व आदि करने पर 'श्रृणुवः' और 'श्रृणुमः' यह स्थिति बनती है।

लोपश्चस्यान्यतरस्यां भवोः 6.4.107

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारम्य लोपो वा म्वोः परयोः। श्रृण्वः-श्रृणुवः, श्रृण्मः, श्रृणुमः। शुश्राव, शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः। शुश्रोथ, शुश्रुवथुः शुश्रुव। शुश्राव-शुश्रव, शुश्रुव, शुश्रुम।

व्याख्याः प्रत्यय के असंयोगपूर्व उकार का लोप हो विकल्प से मकार और वकार परे रहते।

श्रृण्वः, श्रृण्मः– 'श्रृणुवः' और 'श्रृणुमः' में प्रत्यय 'श्नु' का उकार है, उसके पूर्व संयोग भी नहीं, उससे पर वस् और मस् हैं अतः उसका विकल्प से लोप हो जाता है। इस प्रकार दो दो रूप बनते हैं।

उकार का विशेषण 'अससंयोगपूर्वस्य' देने का फल है–'आप्नुमः' इत्यादि स्थलों में उकार का लोप न होना। इन स्थलों में प्रत्यय के उकार के पूर्व संयोग है, अतः इस सूत्र की प्रवत्ति नहीं होती।

---

1. इस सूत्र की परष्कृित वत्ति यह है–'जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेका चोङ्गस्य चासंयोगपूर्वोवर्णस्य यण् स्यात् अजादौ सार्वधातुके'।

शुश्राव–लिट् में तिप्, णल् आदेश , द्वित्व, अभ्यासकार्य, वद्धि तथा आव्श्आदेश होकर रूप बनता है।

शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः–अतुस् और उस् में उवङ् आदेश होकर रूप बनते हैं।

शुश्रोथ–थल् में पित् होने से आर्धधातुक गुण होकर रूप सिद्ध होता है। यहाँ 'कृसभवस्तुद्रुस्त्रुश्रुवो लिटि' सूत्र से 'श्रु' धातु का ग्रहण होने से इट् का निषेध हो जाता है।इसी से 'व' और 'म' में भी इट् नहीं होता है।

शुश्रुवथुः, शुश्रुव–अथुस् और अ में उवङ् आदेश होकर रूप होते हैं।

श्रोता–लुट में तास् और उसका कार्य होकर आर्धधातुक गुण से श्रोता आदि रूप बनते हैं।

श्रोष्यति–लट् में स्य, गुण और मुर्धन्य होकर रूप बन जाते हैं।

शृणोत्– लोट् में शप् का विषय परे रहते 'श्नु' प्रत्यय के उकार को गुण हो जाता है। तातङ् के ङित् होने से गुण न होकर श्रृणुतात् बनता है।

शृणुताम्– तस् के अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वद्भाव के कारण गुण निषेध होता है।

शृण्वन्तु- अन्ति में 'हुश्नुवोः सार्वधातुके से यण् होता है।

लोट् के मध्यम पुरुष के एकवचन में सिप् में श्नुप्रत्यय और शृ आदेश तथा सिप् को हि आदेश होने पर 'शृणुहि' यह स्थिति हुई।

उतश्चप्रत्ययाद् असंयोगपूर्णात् 6.4.160

असंयेगपूर्वात् प्रत्ययाद् उतो हेलुक्। शृणु, शृणुतात् शृणुतम्, शृणुत।

गुणावादेशौ-शृणवानि, शृणवाव, शृणवाम।

अशृणोत्,	अशृणुताम,	अशृण्वन्।
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत।
अशृणवम्,	अशृण्व–अशृणुव,	अशृण्म–अशृणुम।
शृणुयात्,	शृणुयाताम्,	शृणुयुः।
शृणुयाः,	शृणयातम्,	शृणुयात।
शृणुयाम्,	शृणुयाव,	शुणुयाम।

श्रुयात्। अश्रौषीत। अश्रोष्यत्।

व्याख्याः असंयोग[1] पूर्व जो प्रत्यय का उकार, तदन्त अङ्ग से परे 'हि' लुक् हो।

शृणु– 'शृणुहि' में 'णु' में स्थित उकार प्रत्यय का है और उससे पूर्व संयोग भी नहीं है, अतः तदन्द अङ्ग 'शृणु' से पर 'हि' का लोप हो गया। तब रूप सिद्ध हुआ। तातङ् पक्ष में–शृणुतात् ही बनेगा।

शृणवानि–मिप् में मि को 'नि' आदेश और पित् आट् का आगम होने पर 'नु' के उकार को गुण और 'अव' आदेश होकर रूप बनते हैं।

शृणवाव, शृणवाम–इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

अशृणोत्–लङ के प्रथम के एकवचन में। अशृणुताम– द्विवचन में गुण नहीं होता। अशृण्वन–बहुवचन में 'हुश्नुवोः सार्वधातुके से यण् होने से रूप बनता है। अशृणोः–सिप् में।

अशृणवम्–यहाँ मिप् को अम् होता है और उसके पित् होने से पूर्व श्नु के उकार को गुण होकर अवादेश होता है।

अशृण्व–अशृणुव, अशृण्म–अशृणुम–'वस्' और 'मस्' में 'लोप श्चान्यतरस्यां म्वोः' सूत्र से विकल्प से प्रत्यय के उकार का लोप होने से दो दो रूप बनते हैं।

---

1. असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारः, तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक्'इस परिष्कृत वत्ति के अनुसार यह अर्थ किया गया है।

श्णुयात्–विधिलिङ् में श्नुप्रत्यय और श्र आदेश होने पर रूप सिद्ध होते हैं। यासुट् के ङित् होने से श्नु के उकार को गुण नहीं होता।

श्रूयात्–आशीर्लिङ् में अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होता है।

अश्रौषीत्–लुङ् में 'सिचि वद्धिः परस्मैपदेषु' से वद्धि होती है।

प्र० अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः। म० अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट। उ० अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्म।

उपसर्ग के योग में–आश्रणेति–नम्रता दिखाता है।

प्रतिश्रणोति–प्रतिज्ञा करता है।

इस धातु का अर्थ 'जाना' है। यह अनुदात्त–अनिट् भी है।

गम्ल गतौ

इस धातु का अर्थ 'जाना' है। यह अनुदात्त–अनिट् भी है। गम्+शप्+ति–

इषु-गमि-यमां छः 7.1.77

एषां छः स्यात् शिति। गच्छति, जगाम।

व्याख्याः इष् (इच्छा करना) गम् (जाना) और यम् (निवत्त होना) धातुओं को छकार आदेश हो शित् प्रत्यय परे होने पर।

अलोन्त्यपरिभाषा से छकार इनके अन्त्यवर्ण के स्थान में होता है।

सार्वधातुक लकारों में ही शप् शित् प्रत्यय परे होता है उन्हीं में छकार होगा।

गच्छति–गम् धातु के लट् में पित् और शप् होने पर अन्त्य मकार को छकार होगा और छकार को 'छे च' से तुक् आगम तथा तकार को श्चुत्व चकार होकर रूप बनता है।

इसी प्रकार अन्य रूप भी बनते हैं।

जगाम–लिट् में णल् में गम् गम् अ' इस दशा में हलदिशेष, चुत्व और उपधावद्धि होकर रूप सिद्ध होता है। गम्+ अतुस् होन पर–

गम-हन-जन-खन-घसां लोपः क्ङित्यनङि 6.4.98

एषामुपधाया लोपोजादौ क्ङिति, न त्वङि। जग्मतुः, जग्मुः। जगमिथ-जगन्थ, जग्मथुः, जग्म। जगाम-जगम, जग्मिव, जग्मिम। गन्ता।

व्याख्याः गम् (जाना), हन् (हिंसा करना), जन् (पैदा होना), खन् (खनना) और घस् (खाना) धातुओं की उपधा का लोप हो, अजादि कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर, परन्तु अङ् परे रहने पर न हो।

जग्मतुः–अतुस् में 'जगम् अतुस्' इस स्थिति में इससे उपधा लोप होने पर रूप बना।

जग्मुः– उस् में 'जग्मतुः' के समान रूप सिद्धि होती है।

जगमिथ–जगन्थ–थल् में इट विकल्प से होता है, क्योंकि गम् धातु तास् में नित्य अनिट् होते हुए अकारवान् है। इट् पक्ष में जगमिथ। इडभावपक्ष में मकार को 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार और उसको 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से परसवर्ण नकार होकर जगन्थ रूप बनता है।

जग्मिव, जग्मिम––'व' और 'म' में क्रादि नियम से नित्य इट् और अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वद् हुए व म प्रत्यय परे रहते 'गम्–हन्–जन्–इत्यादि सूत्र से उपधालोप होकर रूप सिद्ध होते हैं।

गन्ता–लुट् में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेनदात्तात्' सूत्र से इट् का निषेध हो जाता है और मकार को अनुस्वार, अनुस्वार को परसवर्ण नकार होकर गन्ता आदि रूप बनते हैं।

लट् में भी अनुदात्त होने से इट् का निषेध होता है–

गमेरिट् परस्मैपदेषु 7.2.58

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु। गमिष्यति। गच्छतु। अगच्छत्। गच्छेत्। गम्यात्।

व्याख्याः गम् धातु से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् हो परस्मैपद प्रत्यय पर होने पर।

गमिष्यति–यहाँ 'गम् स्य ति' इस स्थिति में गम् धातु से परे सकारदि आर्धधातुक स्य को परस्मैपद प्रत्यय ति परे होने से प्रकृत सूत्र के द्वारा इट् हो जाता है। तब इट् के इकार इण् से परे होने के कारण 'स्य' प्रत्यय के अवयव सकार को षकार आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

लट् के अन्य रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

गच्छतु– आदि में शित् प्रत्यय शप् परे होने से षकार का 'छ' हुआ है।

पुषादि-द्युतादि-लदितः परस्मैपदेषु 3.1.55

श्यन्विकरणपुषादेः, द्युतादेः, लदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु। अगमत् अगमिष्यत्। इति परस्मैपदिनः

व्याख्याः दिवादिगण के पुष् आदि, द्युत् आदि तथा लदित् धातुओं से परे 'च्लि' को अङ् आदेश ही परस्मैपद में।

अगमत्–गम् धातु के लदित् होने से लुङ् में 'च्लि' को अङ् होता है। –अङ्' क 'अ' शेष रहता है। यथा प्राप्त अन्य कार्य होकर रूप सिद्ध होता है।

प्रं अगमत्, अगमताम्, अगमन्। म० अगमः, अगमतम्, अगमत। उ० अगमम्, अगमाव, अगमाम।

अगमिष्यत्–लङ् में 'स्य' को 'गमेरिट्' सूत्र से इट् होकर 'अगमिष्यत्' आदि रूप बनते हैं।

अथ आत्मनेपदिनो धतवः.

अब आत्मनेपदी धातुयें प्रारम्भ की जाती है।

एध वद्धौ

व्याख्याः यह एध वद्धौ धातु वद्धि अर्थ में आता है।

टित आत्मनेपदानां टेरे 6.4.79

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् एधते।

व्याख्याः टित् लकारों के स्थान में आदेश हुए आत्मनेपद प्रत्ययों के टि के स्थान में 'ए' कार आदेश हो।

'एध धातु से कर्त्ता अर्थ (कर्तवाच्य) में लट् लकार आने पर इसके स्थान में आत्मनेपद के प्रत्यय तङ् आदि होते हैं। क्योंकि 'एध' का अकार अनुदात्त और इत्संज्ञक है। अतः 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' के नियम से 'तिप्तस्झि' इत्यादि सूत्र से यथाक्रम से त आदि आदेश सिद्ध होते हैं।

एधते उनमें प्रथम के एकवचन में 'त' आदेश होने पर उसकी 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होती है। तब 'कर्तरि शप्' से शप् होकर 'एधत' यह स्थिति बनती हैं। यहाँ 'टि' को एकार करने पर रूप सिद्ध होता है।....

द्विवचन में 'आताम्' आदेश होने पर 'शप्' होकर 'एध् अ आताम्' यह दशा बनी। यहाँ'आताम्' अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् है।

आतो ङितः 7.2.81

अतः परस्य ङिमाकारस्य 'इय्' स्यात्।एघेते। एधन्ते।

व्याख्याः अकार से पर ङित् प्रत्ययों के आकार को 'इय्' आदेश हो।

एधेते–'एध् अ आताम्' यहाँ आकार से परे ङित् प्रत्यय 'आताम्' के आदि आकार के स्थान में 'इय्' आदेश हुआ। तब 'एध् अ इय् ताम्' इस दशा में अकार और इकार को एकार गुण एकादेश, वल् तकार परे होने से 'लोपे व्योर्वलि' से यकार का लोप और टि 'आम्' को एकार होने पर रूप बनता है।

एधन्तै—बहुवचन में शप् होने पर 'झ्' को 'अन्त' आदेश 'टि' को एकार और शप् के अकार का अन्त के अकार के साथ पररूप होकर रूप सिद्ध होता है।

मध्यम के एकवचन में शप् होने पर 'एधथास' इस दशा में 'टित आत्मनेपदाना टेरे' से 'टि' को एकार प्राप्त होता है।

थासः सेः 3.4.80

टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे, एधध्वे। अतो गुणे-एधे, एधावहे, एधामहे।

व्याख्याः टित् लकारों के 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश हो।

एधसे—इससे थास् को 'से' आदेश होने पर रूप सिद्ध होता है।

एधेथे—मध्यम के द्विवचन 'आथाम्' आने पर शप्, ङित् होने से प्रथम आकार को 'इय्' आदेश, आकार और इकार को एकार गुण एकादेश, टि 'आम्' को 'ए' होने पर रूप सिद्ध होता है।

एधध्वे—बहुवचन 'ध्वम्' की 'टि' 'आम्' को 'ए' होकर बनता है।

एधे—उत्तम के एकचन इट् में शप् आने पर 'एध् अ इ' इस दशा में टि 'इ' को एकार हो जाता है। 'अतो गुणे' से शप् के अकार का पररूप होने से रूप सिद्ध होता है।

एधावहे, एधामहे—द्विवचन में टि को एकार और 'अतो दीर्घो यञि' से यञादि वहि प्रत्यय परे रहते'एधावहे' और बहुवचन में इसी प्रकार 'एधामहे' रूप सिद्ध होता है। लिट् लकार में—

इजादेश्च गुरुमतोनच्छः 3.1.36

इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छत्यन्यः, तत आम् स्याल्लिटि।

व्याख्याः 'ऋच्छ' धातु से भिन्न गुरुवर्णवाले इजादि धातु से 'आम्' हो लिट् परे रहते।

'एध्' धातु का 'ए' एच् आदि है और वह गुरुमान् भी है, अतः इससे 'आम्' होने पर 'आमः' से लिट् का लोप हो जाता है। तब 'एधाम्' यह स्थिति बनी है। आमन्त होने से 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि' से लिडन्त कृ, भू और अस् का अनुप्रयोग होता है 'कृ' के अनुप्रयोग होने पर 'एधाम् कृ लिट्' यह दशा होती है। जब लिट् के स्थान में परस्मैपद आदेश प्राप्त है—

आम्प्रत्ययवत् कृञोनुप्रयोगस्य 1.3.63

आम् प्रत्ययो यस्माद् इति-अतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोप्यत्मनेपदम्।

व्याख्याः आम् प्रत्यय जिस धातु से होता है, आम प्रकृतिभूत उस धातु के समान अनुप्रयुज्यमान कृञ् धातु से भी आत्मनेपद हो।

आम् प्रत्यय इति—सूत्रस्थ 'आम्प्रत्ययवत्' पद में 'वत्' 'इव' के अर्थ में है और 'आम्प्रत्यय' यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहि भी 'अतद्गुणसंविज्ञान' है। 'आम्' प्रत्ययो यस्मात्—आम् प्रत्यय हुआ है जिससे' यह इसका विग्रह है।

तात्पर्य यह है कि कृञ् धातु ञित् होने से उभयपद है। अतः कर्तभिन्न परगामी क्रियाफल होने पर परस्मैपद प्राप्त होता है। उसकी यह सूत्र व्यवस्था करता है कि जिस धातु से आम् हुआ है यदि वह धातु आत्मनेपद है तो अनुप्रयुक्त कृञ् से भी आत्मनेपद हो अन्यथा नहीं। इस कारण 'गोपायाचकार' में आत्मनेपद नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ आम् की प्रकृति 'गुप्' धातु परस्मैपदी है।

प्रकृत में आम् 'एध्' धातु से हुआ है। वह आत्मनेपदी है, अतः उससे अनुप्रयुक्त कृञ् से भी 'आत्मनेपद' होता है।

यहाँ 'तद्गुणसंविज्ञान' का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। बहुव्रीहि दो प्रकार का होता है –1 तद्गुणसंविज्ञान, 2 अतद्गुणसंविज्ञान। 'तस्य अन्यपदार्थस्य प्रधनीभूतस्य, गुणाः विशेषणानि, संविज्ञायन्ते क्रियान्वचितया ज्ञायन्ते यत्र स तद्गुणसंविज्ञानः' यह तदगुणसंविज्ञान का विग्रह है। तात्पर्य यह है कि बहुव्रीहि में प्रायः अन्यपदार्थ प्रधान होता है और उसका ही क्रिया में अन्वय होता है। जहाँ विशेषणीभूत पदार्थो का भी अन्वय क्रिया में होता है, उसे तद्गुणसंविज्ञान कहा जाता है जैसे—पीताम्बरमानय—पीले कपड़ेवाले व्यक्ति को लाओ। यहाँ 'पीताम्बर' बहुव्रीहि

समास है। यहाँ अन्य पदार्थ पुरुष के विशेषणीभूत पदार्थ 'पीले कपड़े' का भी 'लाना' क्रिया में अन्वय होता है। उस पुरुष को कपड़ों सहित लाया जाता है। इस प्रकार यह 'तद्गुणसंविज्ञान' हुआ।

'तस्य–प्रधानीभूतस्य अन्यपदार्थ तय, गुणाः–विशेषणानि, न संविज्ञायन्ते–क्रियान्वयितया न प्रतीयन्ते इति' यह 'अतद्गुणसंविज्ञान' का विग्रह है। इसका तात्पर्य यह है–जहाँ प्रधान–अन्यपदार्थ–के विशेषण रूप में आये हुए पदार्थों का क्रिया में अन्वय नहीं होता, उसे 'अतदगुणसंविज्ञान' कहते हैं। जैसे–'दष्टकाशीकमानय–जिसने काशी देखी हो, उसे लाओ।' यहाँ अन्यपदार्थ पुरुष के विशेषण रूप में आये हुए 'काशी' पदार्थ का आनयन–लाना–क्रिया में अन्वय नहीं होता, पुरुष के साथ काशी नहीं लाई जाती। अतः यह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है।

प्रकृत में 'आम्प्रत्यय' पद में अतद्गुणसविज्ञान बहुव्रीहि है। क्योंकि अन्य पदार्थ धातु के साथ विशेषणीभूत आम् प्रत्यय का आत्मनेपद होने की क्रिया में अन्वय नहीं होता, आम्प्रत्यय आने पर तदन्त से तो कोई पद आता ही नहीं, वहाँ तो कृ आदि का अनुप्रयोग हो जाता है। अतः यह अतद्गुणसंविज्ञान है। अतएव वत्ति में इसका अर्थ 'आम्प्रकृति' किया गया है। आम्प्रत्यय के प्रकृतिभूत धातु के समान अनुप्रयुक्त कृा् से भी आत्मनेपद आता है' यह सारभूत अर्थ उक्त अतद्गुण–संविज्ञान का ही फल है।

'एधाम् कृ त' यह अवस्था हुई। इस अवस्था में–

लिटस्त-झयोरेश्-इरेच् 3.4.81

लिडादेशयोस्तझयोः 'एश्' इरेच्' एतौ स्तः। एधाचक्रे, एधाचक्राते, एधाचक्रिरे। एधाचकृषे, एधाचक्राथे–

व्याख्याः लिट् के स्थान में आदेश हुए 'त' और 'झ' को 'एश' और 'इरेच्' आदेश क्रम से हों।

'एश्' में शकार इत् है, अतः शित् होने से वह सम्पूर्ण 'त' को आदेश होती है। 'इरेच्' का चकार इत्संज्ञक है। यह अनेकाल् होने से सम्पूर्ण 'झ' के स्थान में आदेश होता है।

एधाचक्रे– इससे प्रकृत में 'त' को 'एश्' आदेश होने पर 'एधाम् कृ ए' इस दशा में द्वित्व, उरत्, चुत्व, यण्, म को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होकर यह रूप बनता है।

एधाचक्राते– 'झ' में 'झ' को इरेच् आदेश् होने से सिद्ध होता है।

एधाचकृषे– थास् में उसको 'से' आदेश होकर सकार को इण् ऋकार से पर होने के कारण मूर्धन्य षकार हो 'एधाचकृषे' रूप होता है। वलादि आर्धधातुक होने से प्राप्त इट् का 'कृसभवस्तुद्रुस्त्रुश्रुवो लिटि' से निषेध हो जाता है।

एधाचक्राथे–आथाम् में पूर्ववत् सिद्धि होती है।

इणः षीध्वं-लुङ् लिटां धोङगात् 8.3.78

इण्णन्ताद् अङ्गत् परेषां षीध्वं -लुङ्-लिटां धस्य ढः स्यात। ए धाचक्रे एधाचकृवहे। एधाम्बभूव। एधामास। एधिता, एधितारौ, एधितारः। एधितासे, एधितासाथे-

व्याख्याः इण्णन्त अङ्ग से परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् के धकार को ढकार हो।

एधाचकृढ्वे– 'ध्वम्' में ध्वम् के अन्तिम भाग 'अम' टि के स्थान में एकार होने पर सिद्ध हुई स्थिति 'एधाचकृ' अन्त में ऋकार होने से इण्णन्त है और उससे पर लिट् के मध्यम के बहुवचन 'ध्वम्' का धकार है, उसके स्थान में प्रकृत सूत्र से ढकार होकर रूप की सिद्धि होती है।

एधाचक्रे– 'इट्' में टि इकार को एकार होकर रूप सिद्ध होता है।

एधाचकृवहे, एधाचकृमहे– 'व' और 'म' में रूप बनते हैं। इनमें भी 'कृसभ' आदि सूत्र से इट् का निषेध होता है।

एधाम्बभूव, एधामास–भू के अनुप्रयोग में 'एधाम्बभूव' आदि और अस् के अनुप्रयोग में 'एधामास' आदि रूप बनते हैं।

लुट् में प्रथम के रूप परस्मैपदी धातुओं के समान ही बनते हैं–एधिता, एधितारौ, एधितारः।

एधितासे–मध्यम में–थास् को 'से' आदेश होने पर 'तासस्त्योर्लोपः' से सकार का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

एधितासाथे–आथाम् में टि 'आम्' को एकार होकर रूप बनता है।

धि च 8.2.25

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः। एधिताध्वे।

व्याख्याः धकारादि प्रत्यय परे होने पर सकार का लोप हो।

एधिताध्वे–'एधितास् ध्वे' इस दशा में इससे सकार का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

ह एति 7.4.52

तासस्त्योः सस्य हः स्याद् एति परे। एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे। एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

('आम्' आदेशविधिसूत्रम्)

व्याख्याः तास् और अस् धातु के सकार को हकार हो एकार परे होने पर।

एधिताहे– 'एधितास् ए' यहाँ एकार परे होने से तास् के सकार को हकार होकर रूप सिद्ध होता है।

एधितास्वहे, एधितास्महे–यहाँ टि को ए हुआ है।

लट् में विशेष कार्य 'टि' को एकार आदेश करना है। शेष कार्य परस्मैपद के समान ही होते हैं।

लोट् के प्रथम पुरुष के एकवचन में टि को एकार करने पर 'एधते' यह स्थिति हुई।

आमेतः 3.4.9०

लोट एकारस्याम् स्यात्। एधताम् एधेताम्, एधन्ताम।

व्याख्याः लोट् के एकार को 'आम्' आदेश हो।

एधताम्–'एधते' में एकार को 'आम्' आदेश करने पर रूप बनता है।

एधेताम्, एधन्ताम्–द्विवचन और बहुवचन में भी लट् के समान 'एधेते' और 'एधन्ते' बनाने के अनन्तर एकार को 'आम्' आदेश होकर रूप सिद्ध होते हैं।

मध्यम के एकवचन में लट् के समान एधसे' बनने पर 'आमेतः' से एकार को आम प्राप्त होता है।

स-वाभ्यां वामौ 3.4.19..

स-वाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः। एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम्।

व्याख्याः वकार परे लोट् के एकार को क्रम से 'व' और 'अम्' आदेश हो।

यह सूत्र 'आमेतः' का अपवाद है।

एधस्व–सकार से पर ऐकार को व होकर रूप बना। इसी प्रकार ध्वम् लट् के समान 'ध्वे' बनने पर प्राप्त आम् आदेश को बाधकर 'अम्' होने से एधध्वम् रूप बनता है।

उत्तम में लट् के समान 'एधे' एधावहे, एधामहे' बनने पर एकार को आम् प्राप्त होता है। यहाँ आट् का आगम होता है। इसलिए इट् में 'एघ् अ आ ए' यह स्थिति रहती है। इसे सवर्ण दीर्घ होकर एधा ए' यह स्थिति बनती है।

एत ऐ 3.4.93..

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। एधै, एधावहै, एधामहै। आटश्च-ऐधत, ऐधताम्, ऐधन्त। ऐधथा, ऐधेथाम्,ऐधध्वम् ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि।

व्याख्याः लोट् के उत्तम के एकार को ऐ हो।

यह भी 'आमेतः' का अपवाद है।

एधै–प्रकृत सूत्र से एकार को ऐकार होने पर आट् के साथ वद्धि होकर रूप बनता है।

एधावहै, एधामहै—द्विवचन और बहुचन में 'एध् अ आ वहि' और 'ए ध् अ आ महि' इस दशा में सवर्णदीर्घ और टि को ए होने पर 'एधावहे और 'एधामहे' इस दशा में एकार को प्राप्त आम् को बाधकर ऐकार आदेश हुआ। तब 'एधावहै' और 'एधामहै' रूप सिद्ध होते हैं।

लङ् में अजादि होने से 'आडजादीनाम्' सूत्र से अङ्ग को आट् का आगम होता है। तब 'आटश्च' से वद्धि एकादेश ऐकार होकर 'ऐधत' आदि रूप बनते हैं।

ऐधे—यहाँ शप् के अकार और इट् के इकार का गुण 'ए' कार होता है।

ऐधावहि, ऐधामहि—यहाँ शप् के अकार को याादि प्रत्यय 'वहि' ओर 'महि' परे होने से 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घ होता है।

लिङः सीयुट 3.4.102..

'लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः स्यात्'। सलोपः-एधेत, एधेयाताम्।

व्याख्याः लिङ् के स्थान में आदेश हुए आत्मनेपद प्रत्ययो को सीयुट्' आगम हो।

सलोप इति—विधिलिङ् में सार्वधातुक होने से 'सीयुट' के सकार का लिङः सलोपोनन्त्यस्य' से लोप होता है।

एधेत—प्रथम के एकवचन में शप् होने पर 'एध् अ सीय् त' यह अवस्था हुई। यहाँ सार्वधातुक लकार होने से तदवयव सीयुट् के सकार का 'लिङःसलोपोनन्त्यस्य' से लोप होता है। तथा 'लोपो व्योर्वलि' से वल् तकार परे होने से यकार का भी लोप होता है। तब 'एध् अ ई त' इस दशा में 'आद् गुणः' से रूप बनता है।

एधेयाताम्— आताम् में सकार का लोप और अकार तथा ईकार को गुण एकार होकर 'एधेयाताम्' रूप सिद्ध होता है।

झ में सीयुट, उसके सकार का लोप और शबादि होने पेर एधेय् झ' या स्थिति होती है।

झस्य रन् 3.4.105..

लिङो झस्य रन् स्यात्। एधेरन्। एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेव्वम्।

व्याख्याः लिङ् के 'झ' को रन् आदेश हो।

एधेरन्—'एधेय् झ' यहाँ 'झ' को रन् आदेश होने पर 'लापो व्योर्वलि' के यकार का लोप होकर 'एघेरन्' रूप सिद्ध होता है।

एधेथाः, एधेध्वम्—इनमें भी यकार का लोप हो जाता है।

इटोत् 3.4.106.

लिङाादेशस्य इटोत् स्यात्। एधेय एधेवहि, एधेमहि।

व्याख्याः **इति**—लिङ् के स्थान में हुए आदेश इट् को अत् आदेश हो।

'अत्' का अकार शेष रहता है।

एधेय—'एधेय् इ' यहाँ 'इ' को अकार करने पर 'एधेय' रूप बनता है।

एधेवहि, एधेमहि—यहाँ यकार का लोप हो जाता है।

आशीर्लिङ् में आर्धधातुक होने से 'सीयुट्' के सकार का लोप नहीं होता और वलादि आर्धधातुक होने से इट् आगम हो जाता है। तब 'ए ध् इ सीय् त' यह स्थिति बनती है।

सुट् तिथोः 3.4.107.

लिङस्तथोः सुट्। यलोपः आर्धधातुकत्वात् सलोपो न। एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वसम्। एधीषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि। ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्-

व्याख्याः लिङ् के तकार और थकार को 'सुट्' आगम हो।

यलोप इति—इस सूत्र से तकार और थकार को सुट् आगम होने पर 'एध् इ सीय् स् त' इस स्थिति में वलादि आर्धधातुक परे होने से यकार का लोप हुआ।

आर्धधातुकत्वादिति—आर्धधातुक होने से 'लिङः सलोपः–' से 'सीयुट्' के सकार का लोप नहीं होता।

तब 'एध् इ सी स् त' इस दशा में इण् से परे होने के कारण दोनों प्रत्यय के अवयव सकारों के मूर्धन्य षकार आदेश और ष्टुत्व से तकार का टकार हो कर एधिषीष्ट रूप सिद्ध होता है।

आताम् में तकार को सुट् होने से एधिषीयास्ताम् और झ में 'रन्' आदेश होने से यकार का लोप होकर एधीषीरन् रूप बनते हैं।

एधिषीष्ठाः थास् में थकार को सुट् आगम होकर मूर्धन्य आदेश होने पर थकार को ष्टुत्व ठकार होकर एधिषीष्ठाः यह रूप बनता है।

एधिषीध्वम्—यहाँ इण् इट् के इकार से पर 'षीध्वम्' है, पर अङग इण्णन्त नहीं, क्योंकि इट् आगम सीयुट् को होता है, उसी का अवयव वह है, उसके ग्रहण से उसका भी ग्रहण होगा। अतः यहाँ 'इषीध्वम्' इतना 'षीध्वम्' है और अङ्ग 'एध' इतना। इस प्रकार अङग इण्णन्त नहीं अतः 'इणः षीध्वम्' इत्यादि सूत्र से धकार को ढकार नहीं होता।

एधिषीय—यहाँ 'एध् + इ सीय् इ' इस स्थिति मं 'ईट्' को 'इटोत्' से अकार होने पर सीयुट् के सकार को मूर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ है।

ऐधिष्ट— एध् (लुङ्) आट्, वद्धि, त, च्लि्, उसको सिच्, इट्, षत्व और ष्टुत्व होकर रूप सिद्ध हुआ है।

एधिषाताम्— एध्, लुङ्, आट्, वद्धि, आताम् आदेश, च्लि, उसको सिच्, उसको इट् और षत्व करने से उक्त रूप सिद्ध होता है।

आत्मनेपदेष्वनतः 1.1.5.

अनकारात् परस्यात्मनेदेषु झस्य 'अत्' इत्यादेशः स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठाः ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम। ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि। ऐधिष्यत ऐधिष्येताम्, एधेधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।

व्याख्याः अकारभिन्न वर्ण से पर आत्मनेद 'झ्' के स्थान में 'अत्' आदेश हो।

यह 'झोन्तः' का अपवाद है।

ऐधिषत—एध् धातु से पर 'झ्' को 'अत्' आदेश होगा, क्योंकि यहाँ वह अकार से पर नहीं, सिच् के सकार से परे है। इस प्रकार 'ऐधिषत' रूप बनता है।

ऐधिष्ठाः—एध् से लुङ्, आट् वद्धि, च्लि, सिच्, थास्, इट्, षत्व और ष्टुत्व ठकार होकर यह रूप सिद्ध होता है।

ऐधिढ्वम—एध् से लुङ, आट्, वद्धि, ध्वम्, च्लि, सिच्, इट, सलोप और ढत्व होकर रूप सिद्ध होता है।

यहाँ सकार का लोप 'धि च' से होता है और ढत्व 'इणः षीध्वं लुङ लिटां धोङ्गात्' से क्यों कि ध्वम् प्रत्यय पर रहते इण्णन्त अंग 'ऐधि' है, सिच् प्रत्यय धातु से होता है, और इट् आगम सिच का अवयव है। इस प्रकार 'तदादि' इण्णन्त अङ्ग मिल जाने से ढत्व हो जाता है।

ऐधिष्यत—आदि रूप लङ् लकार में बनते हैं। प्रक्रिया में कुछ अधिक विशेषता नहीं। लट् के समान ही कार्य होते हें। यहाँ ङित् लकार होने से आट् अधिक होता है और टित् लकार न होने से टि को एकार नहीं होता।

कमु कान्तौ.

इसका अर्थ है इच्छा करना।

कमेर्णिङ् 3.1.30

स्वार्थे। ङित्वात् तङ-कामयते।

व्याख्याः 'कम्' धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में।

अय् आम्अन्ताल्वाय्येन्विष्णुषु 6.4.55..

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु इष्णु-षु णेरयादेशः स्यात्। कामायाचक्रे। 'आयादयः-इति णि् ण् वा-चकमे चकमाते चकमिरे।चकमिषे चकमाथे, चकमिध्वे। चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे। कामयिता, कमिता। कामयितासे। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट।

व्याख्याः णिङ् स्वार्थिक प्रत्यय है अर्थात् इसके द्वारा प्रकृति के अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता। इसके णकार और इकार इत्संज्ञक हैं,णि् होने का फल वद्धि आदि होना और ङित् होने का फल आत्मनेपद होता है।

कम् से णिङ् आने पर 'कम् इ इस' दशा में 'अत उपधायाः' से उपधावद्धि होकर 'कामि' बनता है। इसकी 'सनाद्यनता धातवः' से धातुसंज्ञा होकर लकारों की उत्पत्ति होती है।

ङित्वादिति—ङित् होने से कामि धातु से आत्मनेपद (तङ्) आता है।

कामयते—लट् में त, शप्, गुण, अय् आदेश और टि को एकार करने से यह रूप बनता है।

आगे भी इसी प्रकार रूप बनते हैं—कामयते, कामयते, कामयन्ते। कामयसे, कामयेथे, कामयध्वे। कामये, कामयावहे, कामयामहे।

लिट लकार में।

व्याख्या—आम, अन्त, आलु आय्य, इत्नु, और इष्णु इन प्रत्ययों के परे रहते णि को 'अय्' आदेश हो।

यह 'अम्' आदेश की विधि 'णेरनिटि' सूत्र से प्राप्त 'णि' लोप का अपवाद है।

कामयाचक्रे —**'**णिङ्' पक्ष में आम् होने पर णि को 'अय्' आदेश होकर 'कामयाम्' बनता है। 'कृ' का अनुप्रयोग होकर निम्नलिखित रूप बनते हैं।

कामयाचक्रे, कामयाचक्राते, कामयाक्रिरे।

कामायाचकृषे, कामयाचक्राथे, कामयाचकृढवे।

कामायाचक्रे कामयाचकृवहे कामयाचकृमहे।

आयादय इति—यहाँ 'आयादय आर्धधातुक वा' सूत्र से णिङ् विकल्प से होता है क्योंकि यह णिङ् आय् आदियों में आता है।

चकमे इत्यादि रूप णिङ् के अभाव में बनते है।

कामयिता, कमिता—लुट् में णिङ् विकल्प से दो दो रूप बनते है।

कामयताम्—आदि शेष रूप 'एघ्' के समान ही बनते है।

विभाषेटः 8.3.79..

इणः परो य इट् ततः परेषा षीध्वं-लुङ्-लिटां धस्य वा ढ। कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट, कमिषीध्वम्।

व्याख्याः इण् से परे जो इट्, उससे पर षीध्वम, लुङ् और लिट् के धकार को विकल्प से ढकार हो।

कामयिषीढ्वम इति—आशीर्लिङ के णिङ् पक्ष में ध्वम् में 'कामयिषीध्वम' इस दशा में इण् यकार से परे इट् है, उससे परे 'षीध्वम्' के धकार को विकल्प से ढकार होकर दो रूप बनते हैं।

कमिषीष्ट—यह आशीर्लिङ् का णिङ् के अभाव पक्ष का सूत्र है। यहाँ प्रथम पुरुष के एक वचन में 'कम् त' इस स्थिति में सीयुट, उट् का लोप, इट् आगम, तकार को 'सुट् तिथोः' से सुट् आगम, उट् का लोप, यकार का वलादिलोप और

सीयुट् के तथा सुट् के सकारों को मूर्धन्य षकार करने पर लकार को ष्टुत्व से टकार कर रूप सिद्ध होता है।

कमिषीध्वम्—णिङ् के अभावपक्ष में ध्वम् का रूप बनता है। यहाँ 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्' इस सामान्य सूत्र से भी ढत्व नहीं होता, क्योंकि 'कम्' यह अङ्ग इण्णन्त नहीं, इट् तो सीयुट् का अवयव होने से अङ्ग का अवयव नहीं।

लुङ् लकार में 'अ काम इ च्लि त' इस अवस्था मे—

णि-श्रि-द्रु-स्रुभ्यः कर्तरि चङ् 3.1.48.

ण्यन्तात् श्रयादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे। 'कामि अ त' इति स्थिते।

व्याख्याः ण्यन्त और श्रि, द्रु तथा स्रु धातु से पर 'च्लि' को चङ हो कर्त्रर्थ (कर्तवाच्य) लुङ् परे रहते।

इस सूत्र से 'च्लि' को चङ् हो गया। 'चङ्' के चकार और ङकार इत्संज्ञक हैं। केवल 'अ' कार बचता हैं ण्यन्त होने से यहाँ चङ् होता है। तब 'अ काम् इ अ त' यह स्थिति हुई।

'चङ्' की 'आर्धधातु' संज्ञा है।

णेरनिटि 6.4.51.

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

व्याख्याः 'अनिडादि (जिसके आदि में इट् हो) आर्धधातुक परे रहते 'णि' का लोप हो।

'अकाम् इ अ त' इस दशा में अनिडादि आर्धधातुक चङ् के पर होने से 'णि' का लोप हुआ। तब 'अ काम अ त' यह दशा हुई।

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः 7.4.1..

चङ्परे णौ यदङ्गम्, तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्।

व्याख्याः चङ् है पर जिस से, ऐसे णि परे रहते जो अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व हो।

'अकाम् अ त' इस दशा में चङ् पर णि है, अर्थात् णि से परे चङ् है अतः अङ्ग् 'काम्' की उपधा को ह्रस्व हो जायगा। अब 'अ कम् अ त' यह स्थिति बनी।

चङि 6.1.11..

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्येकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः अजादेर्द्वितीयस्य।

व्याख्याः चङ् परे रहते अभ्यासरहित (अर्थात् जिसको पहले द्वित्व न हुआ हो) धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो, किन्तु यदि धातु अजादि हो तो उसके द्वितीय एकाच् को हो।

प्रकृत में धातु का अवयव प्रथम एकाच् व्यपदेशिवद्भाव से 'कम्' है, यह अभ्यासरहित है और इससे चङ् परे है। अतः द्वित्व हो जायगा। तब 'अ कम् कम् अ त्' यह स्थिति हुई।

यहाँ अभ्यासकार्य करने पर 'अ च कम् अ त' यह स्थिति होती है।

सन्वत् लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे 7.4.93..

चङ्परे णौ यदङ्, तस्य योभ्यासो लघुपरः, तस्य सनीव कार्यं स्वात्, णावग्लोपेसति।

व्याख्याः णि प्रत्ययान्त अङ्ग से परे चङ् हो, उस अङ्ग को अभ्यास से परे लघुवर्ण हो तथा अङ्ग के अक् का णि के कारण लोप न हो तो णि परे होने पर अङ्ग पर सन्वत् कार्य होते हैं, अर्थात् जो कार्य सन् प्रत्यय परे होने पर होते हैं वही कार्य होते हैं।

'अच कम् अ त' यहाँ चङ्—परक णि स्थानिवद्भाव से है। उसके परे रहते अङ्ग है 'अचकम्', इसका अवयव अभ्यास है च' वह लघु पर भी है, क्योंकि उसके आगे 'क' है, वह लघुस्वरयुक्त होने से लघु है, अतः यहाँ वे कार्य होंगे जो सन् परे रहते होते हैं। वे कार्य आगे बताये जा रहे हें। यहाँ पर णिनिमित्तिक अक् का लोप भी नहीं हुआ है।

सन्वद्भाव के दो फल है।, एक तो 'सन्यतः' से अभ्यास के अकार को इकार होना और दूसरा अभ्यास के लघु अच् को 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ करना है।

यदि णिनिमित्तक अक् का लोप हुआ हो, तो धातु को सन्वद्भाव नहीं होगा और अतएव वहाँ अभ्यास के अकार को इकार और दीर्घ न होंगे।

जैसे—अचकथत्। यह कथ्' धातु के लुङ् का रूप है। 'कथ' धातु चुरादि गण का है और अदन्त है, 'णि' आने पर 'अतो लोपः' से आर्धधातुक णि परे होने से अकर का लोप होता है। अकार अक् है, अतः यह णिनिमित्तक अग्लोपी है। अतएव सन्वद्भाव नहीं होता।

'णिनिमित्तक' कहने से यदि अन्य कारण से अक् का लोप हुआ हो तो वहाँ सन्वद्भाव हो जाता है। जैसे—'डुपचष्' धातु है, यहाँ अकार का लोप होता है, पर णि को निमित्त मानकर नहीं, अपितु 'उपदेशेजननुनासिक इत्' सूत्र से किसी विशेष निमित्त के बिना ही हो जाता है। अतः यहाँ सन्वद्भाव का निषेध नहीं होता। सन्वद्भाव होने पर अभ्यास अकार को इकार और उसको दीर्घ हो जाता है। तब 'अपीपचत्' रूप बनता है।

सन्यतः 7.4.79..

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि।

व्याख्याः अभ्यास के अकार को इकार हो सन् परे होने पर। इसके उदाहरण सन्नन्त—प्रक्रिया में 'जिगमिषति' आदि मिलेंगे।

प्रकृत में सन्वद्भाव होने के कारण इसकी प्रवत्ति होगी। 'अ च कम् अ त' इस दशा में अभ्यास के अकार को इकार कर देने से 'अ चिकम् अ त' यह दशा हुई।

दीर्घो लघोः 7.4.94..

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये। अचीकमत। णिङभावपक्षे-

व्याख्याः अभ्यास के लघु को दीर्घ हो सन्वद्भाव के विषय में अर्थात् जहाँ सन्वद्भाव होता हो, वहाँ अभ्यास के लघु को दीर्घ हो।

सन्वद्भाव होता है चङ्—परक णि परे रहते जो अङ्ग उसके लघुपरक अभ्यास को, अतः यह सूत्र भी उपयुक्त स्थल में ही काम करेगा।

अचीकमत—'अचि कम् अ त' इस स्थिति में सन्वद्भाव का विषय होने से प्रकृत सूत्र से अभ्यास के लघु इकार को दीर्घ करने पर रूप सिद्ध हुआ।

अचीकमत,	अीचकमेताम,	अचीकमन्त।
अचीकमथाः,	अचीचकमेथाम,	अचीकमध्वम्
अचीकमे	अचीकमावहि,	अचीकमामहि।

णिङ् के अभावपक्ष में—

(वा) कमेश्च्लेश्लचङ् वाच्यः। अचकमत।

व्याख्याः कम् धातु से परे 'च्लि' को चङ् हो।

अचकमत—चङ् होने से द्वित्व होता है और तब द्वित्व आदि कार्य करने पर रूप बनता है।

इसमें णि के न होने से सन्वद्भाव नहीं होता अतएव अभ्यास को इकार और इकार को दीर्घ भी नहीं होता।

अकामयिष्यत—यह लङ् प्रथम प्ररुष एक वचन का णिङ् के अभाव पक्ष का रूप है।

अय गतौ .185

('लत्व' विधिसूत्रम्)

व्याख्याः इस धातु का अर्थ जाना है।

अयते—आदि लट् में रूप बनते हैं। शप् प्रत्यय और टि को एकार कार्य होते हैं।

उपसर्गस्यायतौ 8.2.19.

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफः, तस्य लत्वं स्यात। प्लायते। पलायते।

व्याख्याः अय् धातु परे हो जिससे, उस उपसर्ग के रेफ को लकार होता है।

प्लायते, पलायते (भागता है)— 'प्रायते' और 'परायते' में 'अयते' अय धातु का रूप परे है, उसके पूर्व उपसर्ग 'प्र' और 'परा' के रेफ को लकार होने से प्लायते और पलायते रूप सिद्ध होते हैं। इनका अर्थ –'भागना' है। उपसर्ग के कारण धातु का अर्थ बदल जाता है।

दयायासश्च 3.1.37..

दय, अय, आस् एभ्य आम् स्यात् लिटि। अयाचक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट। विभाषेटः–'अयिषीढ्वम्' अयिषीध्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्, आयिध्वम्। आयिष्यत। ,

व्याख्याः दय, अय् और आस् धातुओं से आम् हो लिट् परे रहते।

अयाचक्रे – अय् धातु से आम् आने पर लिट् का लोप हुआ। तब कृ आदि का अनुप्रयोग होता है। कृ के अनुप्रयोग में ये रूप बनते हैं।

'भू' तथा 'अस्' के अनुप्रयोग में अयाम्बभूव और अयामास इत्यादि।

अयिता–लुट् के प्र० पु० एक वचन में तास्, उसको इट् आगम, तिप् के स्थान में 'डा' आदेश, डित्व सामर्थ्य से तास् के टि आस् का लोप होकर रूप सिद्ध होता है। लुट् के अन्य रूप इसी प्रकार सिद्ध होंगे।

अयताम्–लोट् के प्र० पु० एक वचन में आट्, त् शप् होकर रूप सिद्ध हुआ। लङ् के शेष रूपों की सिद्धि इसी प्रकार होगी।

अयिषीष्ट–आशीर्लिङ् प्र० पु० एक वचन में त, शप्, सीयुट, उट्, लोप, सकार लोप, गुण और यकार का वलयादि लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

विभाषेट इति– आशीर्लिङ् और लुङ् के ध्वम् में 'विभाषेटः' से ढत्व विकल्प से हो जाता है, क्योंकि यहाँ इण् यकार से परे इट् है, उससे परे 'षीध्वम्' और 'लुङ्' का धकार है। अतः अयिषीढ्वम् अयिषीध्वम् और आयिढ्वम् आयिध्वम् ये रूप सिद्ध होते हैं।

लुट–प्र० अयिता, अयितारौ, अयितारः। म० अयितासे, अयितासाथे, अयिताध्वे। उ० अयिताहे, अयितास्वहे, अयितास्महे।

लोट्–प्र० अयताम्, अयेताम्, अयन्ताम्। म० अयस्व, अयेथाम, अयध्वम्। उ० आये, आयावहि, आयामहि।

लङ्– प्र० आयत, आयेताम्, आयन्त। म० आयथाः, आयेथाम आयध्वम्। उ० आये, आयावहि, आयामहि।

विधिलिङ्–प्र० अयेत, अयेयाताम्, अयेरन्। म० अयेथाः, अयेयाथाम्, अयेध्वम्। उ० अयेय , अयेवहि, अयेमहि।

आशीर्लिङ्–प्र० अयिषीष्ट, अयिषीयास्ताम्, अयिषीरन्। म० अयिषीष्ठाः, अयिषीयास्थाम्, अयिषीढ्वम् अयिषीध्वम्। उ० अयिषीय, अयिषीवहि, अयिषीमहि।

लुङ्–प्र० आयिष्ट, आयिषाताम्, आयिषत। म० आयिष्ठाः, आयिषाथाम्, आयिढ्वम्, आयिध्वम्। उ० आयिषि, आयिष्वहि, आयिष्महि।

द्युत दीप्तौ द्योतते 88

व्याख्याः इसका अर्थ है चमकना।

द्योतते–द्युत धातु के लट् के प्र० पु० एकवचन में 'द्युत्+त' इस स्थिति में शप्, उकार को लघूपध गुण तथा प्रत्यय की टि को एकार आदेश करने पर रूप सिद्ध हो जाता है।

द्युति-स्वाप्योः संप्रसारणम् 7.4.67.

अभ्यासस्य। दिद्युते।

व्याख्याः द्युत और स्वप् धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो। ......

दिद्युते–लिट् में द्वित्व होने पर अभ्यास के यकार को संप्रसारण और अकार का 'संप्रसाणाच्च' से पूर्वरूप होने पर रूप सिद्ध होता है।

प्र० दिद्युते, दिद्युताते, दिद्युतिरे, । म० दिद्युतिषे, दिद्युताथे, दिद्युताध्वे। उ० दिद्यु, दिद्युतिवहे, दिद्युतिमहे।

लुट् –द्योतिता। लट्–द्योतिष्यतेः। लोट्–द्योतताम्। लङ–अद्योतत। विधिलिङ–द्योतेत। आशीर्लिङ्–द्योतिषीष्ट।

19० द्यु द्भ्यो लुङि 1.3.19.

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मेपदं वा स्यात्। 'पुषादि-' इत्यङ्-अद्युतत्, अद्योतिष्ट। अद्योतिष्यत। एवम्-श्विता वर्णे।।5।। ञिमिदा स्नेहने ।। 6।। ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः।। 7।। 'मोहनयोः' इत्येके। 'ञिक्ष्विदरा' चेत्येके। रुच दीप्तौ, अभिप्रीतौ च।।8।। घुट परिवर्तने।।9।। शुभ दीप्तौ।।1०।। क्षुभ संचलने।।11।। णभ हिंसायाम्।।12।। तुभ हिंसायाम् ।।13।। स्रंसु।।14।। भ्रंसु।।15।। ध्वंसु अवस्रंसने।।16।। ध्वंसु गतौ च।। 17।। स्रम्भु विश्वासे।।17।।

व्याख्याः इति। द्युत आदि धातुओं से पर लुङ् को परस्मैपद विकल्प से हो।

अद्युतत्–परस्मैपद होने पर 'च्लि' को 'पुषादि–द्युतादि–लदितः परस्मैपदेषु' से अङ् आदेश होकर रूप बनता है। अङ् के ङित् होने से गुणनिषेध हो जाता है।

आत्मनेपद में च्लि को सिच् और इट् आगम आदि कार्य होते हैं।

प्र० अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम्, अद्योषित। म० अद्योतिष्ठाः, अद्योतिषाथाम्, अद्योतिध्वम्। उ० अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्महि।

एवमिति–द्युतादिगण में 14 धातुएँ दी हैं। इन में 'श्विता' आदि के रूप द्युत के समान ही बनते हैं। में अत एव इनके रूप नहीं दिखाये गये। सुविधा के लिये यहाँ इनके आवश्यक कुछ रूप लिखे जाते हैं।

श्विता(श्वेत, सुफेद रंग में रंगना)–श्वेतते। शिश्विते। श्वेतिता। श्वेतिष्यते। श्वेतताम्। अश्वेतत। श्वेतेत। श्वेतिषीष्ट। अश्वितत्, अश्वेतिष्ट। अश्वेतिष्यत।

6. मिद् (चिकना होना)–मेद्यते। मिमिदे। मेदिता। मेदिष्यते। मेद ताम्। अमेदत। मेदेत मेदिषीष्ट। अमिदत अमेदिष्ट। अमेदिष्यत।

7 स्विद् (पसीना होना, छोड़ना) –स्वेदते। सिष्वदे । स्वेदिता। स्वेदिष्यते। स्वेदताम्। अस्वेदत। स्वेदेत। स्वेदिषीष्ट। अस्विदत। अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत।

मोहनयोरिति–कोई इसका अर्थ 'छोड़ने' के स्थान में 'मोहित होना' कहते हैं।

ञिक्षिवदा–इति–कोई 'ष्विदा' स्थान पर 'ञिक्ष्विदा' पाठ बताते हैं।

8 रुच् (चमकना, पसन्द[1] आना)– रोचते। रुरुचे। रोचिता। रोचिष्यते। रोचताम्। अरोचत। रोचेत। रोचिषीष्ट। अरुचत। अरोचिष्ट। अरोचिष्यत।

9. घुट् (घोंटना) –घोटते। जुघुटे। घोटिता। घोटिष्यते। घोटताम्। अघोटित। घोटेत। घोटिषीष्ट। अघुटत, अघोटिष्ट। अघोटिष्यत।

1० शुभ (चमकना, शोभा होना) –शोभते। अशुभत। अशोभिष्ट।

11 क्षुभ् (विचलित होना, व्याकुल होना)–क्षोभते। अक्षुभत, अक्षोभिष्ट।

---

1. पसन्द करने अर्थ में जब रुच् धातु का प्रयोग आता है, तब पसन्द करनेवाले के याचक शब्द से 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सूत्र से चतुर्थी आतील है, जैसे–बालकेभ्यः क्रीडनं रोचते–बालकों को खेल पसन्द आता है।

12णभ (हिंसा करना) –नभते। नेभे। अनभत। अनभिष्ट।

13 तुभ (हिंसा करना) – तोभते। अतुभत, अतोभिष्ट।

14 स्त्रसु (गिरना)–स्त्रंसते। सस्त्रंसे। स्त्रंसिता। स्त्रसिषीष्ट। अस्त्रसत[2], अस्त्रंसिष्ट।

15 भ्रंस (गिरना) –भ्रंसते। बभ्रंसे। अभ्रसत्, अभ्रंसिष्ट।

16 ध्वंस् (नराश होना)–ध्वंसत। दध्वंसे। अध्वसत्, अध्वंसिष्ट।

17. ध्वंसु का अर्थ 'जाना' भी है।

18. स्त्रम्भ (विश्वास करना) –स्त्रम्भते। सस्त्रम्भे। अस्त्रभत्, अस्त्रभिभष्ट।

स्त्रम्भ धातु के साथ 'वि' उपसर्ग अवश्य रहता है। तभी 'विश्वास' अर्थ स्पष्ट प्रकट होता है।

वतु वर्तने.

वर्तते। वर्वते। वर्तिता।

व्याख्याः होना।

वर्तते–में शप् और गुण तथा टि को एकार होता है।

ववते–में 'ऋदुपधेभ्यो लिट् कित्वं गुणातपूर्वविप्रतिषेधेन' वार्तिक के बल से गुण होने से पूर्व लिट् कित् हो जाता है, तब 'ग्क्ङिगित च' के निषेध के प्रवत्त होने से पुनः गुण नहीं हो पाता।

वर्तिता–लुट् के प्र. पु. एकवचन में इट् और गुण होकर रूप सिद्ध होता है लट् के शेष रूप भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

वद्भ्यः स्य-सनोः 1.3.91.

वतादिभ्यः पचभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च।

व्याख्याः व्त्[1] आदि पाँच धातुओं से विकल्प से परस्मैपद हो, स्य और सन् के विषय में।

'स्य' में परस्मैपद होने पर 'वत्–स्यति' इस दशा में इट् प्राप्त है।

न वद्भ्यश्चतु र्भ्यः 7.2.59.

वतु-वधु-श्धु-स्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् तङानयोरभावे। वत्स्र्यति, वर्तिष्यते। वर्तताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्ट। अवत्स्र्यत्, अवर्तिष्यत।

व्याख्याः 'वत, वध, श्ध् और स्यन्द'–इन चार धातुओं से पर सकारादि आर्धधातुक को इट् न हो, तङ् और आन (शानच, कानच्) के अभाव में अर्थात् परस्मैपद में।

वत्स्र्यति– यहाँ इट् का निषेध होने पर गुण होकर रूप सिद्ध होता है। परस्मैपद के अभावपक्ष में आत्मनेपद रहने से परस्मैपदनिमित्तक इट् का निषेध नहीं होता। तब 'वर्तिष्यते' रूप बनता है।

अवत्स्र्यत्–लङ् लकार में भी 'स्य' होने से परस्मैपद विकल्प से और परस्मैपद पक्ष में इट् का निषेध भी होता है।

अवर्तिष्यत–दूसरे पक्ष में इट् हो जाता है।

उपसर्ग के योग में–

प्रवर्तते – प्रवत्त होता है। परावर्तते – लौटता है।

---

1. यहाँ अङ् के ङित् होने से 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' से नकार का लोप हो जाता है। इसी प्रकार अन्य नकारवाली धातुओं में भी 'न' का लोप होता है।

2. वतु वर्तने (होना), 2 वधु वद्धौ (बढ़ना), 3 श्धु शब्दकुत्सायाम् (कुत्सित शब्द करना, अपान वायु का शब्), 4 स्यन्दू प्रस्त्रवणे (बहाना) 5 कप् सामर्थ्ये (समर्थ होना), ये पाँच वतादि हैं। ये द्युतादिगण में भी है। यहीं द्युतादिगण समाप्त हो जाता है।

अनुवर्तते — पीछे चलता है। निर्वर्तते — समाप्त करता है।

विवर्तते — बदलता है। परिवर्तते — बदलता है।

आवर्तते — आवत्ति होती है। निवर्तते — विरत होता है—लौटता है।

प्रत्यावर्तते — लौटता है।

इसी प्रकार वधु [1]—वर्धते। ववधे। वर्धिता। वर्त्स्यति, वर्धिष्यते वर्धताम्। अवर्धत। वर्धेत। वर्धिषीष्ट। अवर्धिष्ट। अवर्त्स्यत्, अवर्धिष्यत।

स्यन्दू—स्यन्दते। सस्यन्दे। स्यन्दिता, स्यन्ता। स्यन्त्स्यति। 2स्यनिदष्यते, स्यन्त्स्यते। स्यन्दताम्। अस्यन्दत। स्यन्देत। स्यन्दिषीष्ट। अस्यन्तदत्, अस्यन्दिष्ट, अस्यनत। अस्यन्त्स्यत्, अस्यन्दिष्यत्अस्यन्त्स्यत।

दद दाने.

ददते।

व्याख्याः इसका अर्थ है —देना।

ददते, ददेते, ददन्ते। ददसे, ददेथे, ददध्वे। ददे, ददावहे, ददामहे।

न शस-ददवादि-गुणानाम् 6.4.126.

शसेर्ददेर्वकारदीनां गुणशब्देन विहितो योकारः, तस्य च एत्वाभ्यासलोपौ न। ददते, दददाते; ददिरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत। ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट। अददिष्यत।

व्याख्याः शस (हिंसा करना), दद् (देना) वकारादि धातुओं को और गुणशब्द से विहित अकार को, एत्व और अभ्यासलोप न हों।

ददde—'दद्' धातु को लिट् में 'अत एकहल्मध्येनादेशादेर्लिटि' से एत्व और अभ्यासलाप प्राप्त था, उसको इससे निषेध हो गया। आत्मनेपद के सभी प्रत्यय अपित् होने से 'असंयोगाल्लिट् कित्' से कित् हैं। अतः सभी के परे रहते उक्त दोनों कार्य प्राप्त होते हैं। 'दददे' आदि रूप बनते हैं।

इसके शेष रूप साधारण प्रक्रिया से ही बनते हैं।

त्रपूष लज्जायाम्

त्रपते।

व्याख्याः इसका अर्थ है—लज्जित होना।

तॄ -फल-भज-त्रपश्च 6.4.122.

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्चस्यात् किति लिटि सेटि थलि च। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट, अत्रप्त। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत। इत्यात्मनेपदिनः।

व्याख्याः तॄ (तैरना), फल् (फलना), भज् (सेवा करना) और त्रप् (लज्जा करना) धातुओं के ह्रस्व अकार को एत्व और अभ्यास का लोप हो कित् लिट् और सेट् थल पर होने पर।

'त्रप्' धातु आत्मनेपदी है, इसके सभी लिट्स्थानिक प्रत्यय कित् हैं। अतः सभी में उक्त दोनों कार्य होते हैं—

प्र० त्रेपे, त्रेपाते, त्रेपिरे। म० त्रेपिष, त्रेपाथे, त्रेपिध्वे। उ० त्रेपे, त्रेपिवहे—त्रेप्वहे, त्रेपिहमहे—त्रेप्महे।

---

1. वधु, शधु और स्यन्द धातुओं को मूल में नहीं दिखाया गया है। आवश्यक होने से टीका में उनके रूप दिखा दिये हैं।
2. ऊदित होने से स्यन्द धातु से वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होता है।
3. त्रपूष धातु के अकार और पकार इत्संज्ञक हैं। षकार के इत् होने का फल 'षिदादिभ्योङ्' से अङ् प्रत्यय होकर 'त्रपा' शब्द बनता है और ऊदित् होने का वलादि आर्धधातुक प्रत्ययों को विकल्प से इट् होना है।

वलादि आर्धधातुक को यहाँ धातु के ऊदित होने के कारण 'स्वरतिसूतिसूय तिधूञूदितो वा' से इट् विकल्प से होता है। अतः लुट् (तास्), लट् (स्य), आशीर्लिङ् (सीयुट्) और लङ् (स्य) में दो दो रूप बनते हैं।

अथ उभयपदिनः

अब उभयपदी धातुयें प्रारम्भ होती हैं।

श्रि् सेवायाम्

श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रयिता। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयताम्। अश्रयत्, अश्रयत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ-अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत।

व्याख्याः श्रिा [1]—इसका अर्थ है सेवा करना।

लिट् परस्मैपद में —प्र० शिश्राय, शिश्रियतुः शिश्रियुः। म० शिश्रयिथ, शिश्रियतुः,शिश्रिय। उ० शिश्राय, शिश्रियिव, शिश्रियिम।

शिश्राय— लिट्, तिप, णल्, द्वित्व, अभ्यासकार्य, णित् होने से वद्धि हुई।

शिश्रियतुः—कित् लिट् होने से गुण का निषेध होने पर इयङ् हुआ।

शिश्रयिथ—'ऊदृदन्तैः—' कारिका में 'श्रि' को उदात्त बताया गया है।

अतः यहाँ इट् निषेध नहीं होता। सिप् के स्थान में होने से थल भी पित् है, अतः गुण होकर अयादेश हुआ।

शिश्रियिव और शिश्रियिम—यहाँ भी धातु के सेट् कारिका में पठित होने से इट् हुआ। पर कित् लिट् होने से गुण का निषेध होने पर 'इयङ्' हुआ।

आत्मनेपद में सभी प्रत्यय कित् है, अतः सर्वत्र गुण का निषेध होने से इयङ् होता है—

प्र० शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे। मं शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्व। शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे।

लुट्—	परस्मैपद	आत्मनेपद
प्र०	श्रयिता, श्रयितारौ श्रयितारः।	श्रयिता, श्रयितारौ, श्रयितारः।
म०	श्रयितासि, श्रयितास्थः, श्रयितास्थः।	श्रयितासे, श्रयितासाथे, श्रयिताध्वे।
उ०	श्रयितास्मि, श्रयितास्वः, श्रयितास्मः।	श्रयिताहे, श्रयितास्वहे, श्रयितास्महे।

श्रीयात्— यह आशीर्लिङ् का रूप है। यहाँ 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होता है।

अशिश्रियत्—यह लुङ का रूप है। यहाँ 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्' से च्लि को चङ् और 'चङि' से द्वित्व अभ्यास कार्य और इयङ् होते हैं।

भा भरणे

भरति, भरते। बभार, ब्रभ्रतुः, बभ्रुः, बभर्थ, बभव, बभम। बभ्रे, बभषे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत, भरेत।

व्याख्याः भा (पालन करना)—यह धातु भी ाित् होने से उभयपदी है।

बभर्थ, बभव और वभम—ये क्रमशः थल्, व और म के रूप है।

कृसभवस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि' से यहाँ इट् का निषेध होता है।

आत्मनेपद में —प्र० बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे। म० बभषे बभ्रो बभध्वे। उ० बभ्रे, बभवहे, बभमहे।

---

1. श्रि् धातु का कार इत् हे। अतः ति् होने से यह उभयपदी है। 'स्वरित—ाितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इस सूत्र से कर्तगामी क्रियाफल की विवक्षा में आत्मनेपद और कर्तभिन्न (पर) गामी फल की विवक्षा में परस्मैपद आयगा। इसी बात को ध्यान में रखकर आत्मनेपद ओर परस्मेपद का प्रयोग करना चाहिए।

भरिष्यति, भरिष्यते–लट् के रूप हैं। 'ऋद्धनोःस्ये' सूत्र से ऋदन्त होने के कारण स्य को इट् होता है।

आशीर्लिङ् में 'भयात्' इस दशा में 'अकृत्सार्वधातुकयोदीर्घः' इस सूत्र से दीर्घ प्राप्त होता है।

रिङ् श-यग्-'लिङ्क्षु 7.4.28.

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात्। रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद् दीर्घो न-भ्रियात्।

व्याख्याः श प्रत्यय, यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे रहते ऋकार को रिङ् आदेश हो।

रिङ् का ङकार इत्संज्ञक है।

रीङि प्रकृते इति–'रिङ् ऋतः' इस पूर्व सूत्र से इसमें रीङ् की अनुवत्ति आ सकती थी। पुनः ह्रस्व 'रिङ्' कहना 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से प्राप्त दीर्घ के निवारण के लिए है। अन्यथा रीङ् का ही विधान करते और बल्कि पिछले सूत्र से उसकी अनुवत्ति आ जाने से यहाँ ग्रहण भी न करना पड़ता।

भ्रियात्–ऋकार को 'रि' आदेश होने पर 'भ्रियात्' रूप सिद्ध होता है।

उश्च 1.2.12.

ऋवण्ग्रत् परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। भषीष्ट, भषीयास्ताम्। अभार्षीत।

व्याख्याः ऋवर्ण से रे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं आत्मनेपद में।

भषीष्ट–आशीर्लिङ् आत्मनेपद में 'भ सी स् त' इस अवस्था में इट् तो होता नहीं, क्योंकि धातु अनुदात्त है। इट् न होने से सीयुट् झलादि रहेगा। वह लिङ् को होता है। अतः लिङ् भी झलादि है। इस सूत्र से अत एव कित्व हो जाने से गुण का निषेध हो जाता है। तब दोनों सकारों को मूर्धन्य षकार और कुत्व से तकार को रकार होकर रूप बनता है।

अभार्षीत्– में 'सिचि वद्धिः परस्मैपदेषु' से ऋकार को 'आर' वद्धि होती है। प्र० अभार्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्षुः। मं अभार्षीः अभार्ष्टम् अभार्ष्ट। उ० अभार्षम् अभार्ष्व, अभार्ष्म।

आत्मनेपद में सिच् होने पर 'अ भ स् त' यह अवस्था होती है। यहाँ अनिट होने से इट् नहीं होता। अतः झलादि होने से सिच् 'उश्च' से कित् होता है। कित् होने से गुण नहीं होता।

ह्रस्वादङ्गत् 8.2.27.

सिचो लोपो झलि। अभषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत।

व्याख्याः ह्रस्वान्त अङ्गसे 'अभ' है और झल् कार परे है। अतः सिच् का लोप हो जाता है।

अभषाताम्– में झल् परे नहीं। अतः सिच् का लोप नहीं हुआ।

प्र० अभत, अभषाताम अभषत। म० अभथाः, अभषाथाम्, अभध्वम्। उ० अभषि, अभष्वहि, अभष्महि।

अभरिष्यत–में 'ऋद्धनाः स्ये' से इट् होता है।

ह्रा हरणे

हरति, हरते। जहार, जहर्थ, जह्रिव, जह्रिव, जह्रिम। जहे, जह्रिषे। हर्ता। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु,हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट, हृषीयास्ताम। अहार्षीत, अहृत। अहरिष्यत् अहरिष्यत।

व्याख्याः ले जाना, हरना, चुराना।

ह्रा धातु के रूप 'भा' के बिलकुल समान बनते हैं। केवल लिट् के व म, से, वहि और महि में क्रादिनियम से यहाँ इट् अधिक हो जाता है।

उपसर्ग के योग में–

प्रहरति – प्रहार करता है। आहृरति – लाता है।

प्रहरति — चुराता है। परिहरति — छोड़ता है।

संहरति — नाश करता है। उद्धरति — उद्धार करता है।

उपसंहरति — समाप्त करता है। प्रतिहरति — पहरा देता है।

अनुहरति — समानता करता है। उपहरति — भेंट देता है।

विहरति — क्रीड़ा करता है। अभ्यवहरति — खाता है।

धा् धारणे.

धरति, धरते।

व्याख्याः 4 धा् (धारण करना)– धातु के सम्पूर्ण रूप ह्या् के समान बनते हैं। दधार, दधर्थं, दध्रिव,। दध्रिम। दध्रे, दध्रिषे, दध्रिवहे, दध्रिमहे। धर्ता, धरिष्यति, धरिष्यते। धरतु, धरताम् अधरत अधरत। धरेत्, धरेत। ध्रियात्, धषीष्ट। अधार्षीत्, अधत। अधरिष्यत, अधरिष्यत।

णीा् प्रापणे.

नयति, नयते।

व्याख्याः णीा् (ले जाना)–यह धातु अजन्तं एकाच् है और अजन्त–सेट्–धातु संग्रह कारिका 'ऊद् ऋदन्तैः–' में ग्रहण न होने से अनिट् है।

इसके रूप लिट् में निम्नलिखित बनेंगे–

प्र० निनाय, निन्यतुः, निन्युः। मं निनयिथ–निनेथ, निन्यथुः, निन्य। उ० निनाय–निनय, निन्यिव, निन्यिम।

अजन्त अनिट् होने से थल् में विकल्प से और व तथा म में क्रादिनियम से नित्य इट होता है।

आत्मनेपद में क्रादिनियम के द्वारा से, ध्वम्, वहि ओर महि चारों में नित्य इट् होता है।

प्र० निन्ये, निन्याते, निन्यिरे। म० निन्यिषे, निन्याथे, निन्यिध्वे निन्ये, निन्यिवहे, निन्यिमहे।

लुट्–नेता। लट्–नेष्यति, नेष्यते। लोट्–नयतु, नयताम्। लङ्–अनयत्, अनयत। विधिलिङ–नयेत्, नयेत। आशीर्लिङ् 7नीयात्, नेषीष्ट। लुङ्–अनैषीत्, अनैष्ट। लङ्–अनेष्यत्, अनेष्यत।

उपसर्ग के योग में–

प्रणयति = ले जाता है, प्रेम करता है। उपनयति = दूर ले जाता है, हटाता है।

अनुनयति = मानाता है। निर्णयति = निर्णय करता है।

विनयतs = शिक्षा देता है, कर्ज चुकाता है। आनयति = लाता है।

अवनयति = अवनत करता है। उन्नयति = उन्न करता है।

अभिनयति = अभिनय करता है। परिणयति = विवाह करता है।

उपनयति = भेंट ले जाता है।

यहाँ तक जो पाँच धातु उभ्यपदी हैं वे ाित् हैं। अब स्वरितेत् होने से जो उभयपदी हैं, उन धातुओं को बताते हैं।

डुपचष् पाके

पचति, पचते। पपाच, पेचिथ, पपक्थ। पेचे। पक्ता।

व्याख्याः (पकाना)–इस धातु का केवल 'पच्' बचता है। अकार इसका स्वरित है। अतः स्वरितेत् होने से यह उभयपदी है।

पेचिथ –पपक्थ–थल् में अनिट् अकारवान् होने से विकल्प से इट् होता है। इट् पक्ष में 'थलि च सेटि– से एत्व और अभ्यासलोप होकर पेचिथ' बनता है।

इडभाव पक्ष में 'चोः' कुः' से चकार को ककार होकर 'पपक्थ'।

'व' और 'म' में क्रादिनियम से नित्य इट् होता है। प्र० पपाच, पेचतुः, पेचुः। म० पेचिथ–पपक्थ, पेचथुः, पेच। उ० पपाच–पपच, पेचिव पेंचिम।

कित् लिट में 'अत एकहल्मध्येनादेशादेर्लिटि' से धातु के अकार को एत्व और अभ्यास का लोप और क्रादिनियम से सर्वत्र यथा प्राप्त इट होता है।

प्र० पेचे, पेचाते, पेचिरे। म० पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे। उ० पेचे पेचिवहे, पेचिमहे।

लुट् में –पक्ता। लट्–पक्ष्यति, पक्ष्यते। लोट् –पचतु। आत्मनेपद् में प्र० पचताम्, पचेताम्, पचन्ताम्। म० पचस्व, पचेथाम्, पचध्वम्। उ० पचै, पचावहै, पचामहै।

लङ्–अपचत्, अपचत। विधिलिङ्–पचेत, पचेत। आशीर्लिङ्–पच्यात, पक्षीष्ट।

लुङ् –प्र० अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः। म० अपाक्षीः, अपाक्तम् अपाक्त। उ० अपाक्षम्, अपाक्ष्व, अपाक्ष्म।

यहाँ चोः कु' से चकार को ककार होरे पर इज् ककार से परे मिल जाने से सिच् के सकार की मूर्धन्य हो जाता है। दोनों के संयोग से 'क्ष' बन जाता है। वद–ब्रज–हलन्तस्याचः' से वद्धि होती है।

अपाक्ताम्,

अपाक्तम् और अपाक्त में 'झलो झलि' से सकार का लोप हो जाता है।

प्र० अपक्त, अपक्षाताम्, अपक्षत। म० अपक्थाः, अपक्षाथाम्, अपग्ध्वम्। उ० अपक्षि, अपक्ष्वहि, अपक्ष्महि।

यहाँ त, थास् और ध्वम् में झल् परे होने के कारण मूर्धन्य षकार होने पर दोनों को मिल कर 'क्ष' हो जाता है।
लट्–अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत्

'पच्' धातु के चकार को ककार 'चोः कु' से होता है। जहाँ झल् परे मिलता है, वहाँ चकार को ककार हो जाता है। इसका ध्यान रखना चाहिए।

भज सेवायाम्

भजति,भजते। बभाज, भेजे। भक्ता। भक्ष्यति, भक्ष्यते। अभाक्षीत्। अभक्त, अभक्षाताम्।

व्याख्याः (सेवा करना)–धातु के रूप पच् के बिल्कुल समान बनते हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ जकार को पहले 'चोः कुः' से गकार करना होता है; फिर उसको 'खरि च' से ककार होता है। यह धातु पच् के समान अनिट् है।

यज देवपूजा-संगतिकरण -दानेषु..

यजति, यजते।

व्याख्याः यज्–(देव–पूजा, यज्ञ करना आदि) धातु के जकार को भी पूर्वोक्त प्रकार से पहले गकार और फिर ककार होता है। यह धातु भी अनिट्[2] (अनुदात्त) है।

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् 6.1.97.

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य संप्रसारणं लिटि। इयाज।

व्याख्याः वच् आदि और ग्रह आदि दोनों गण की धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण हो लिट् परे रहते।

वच् आदि 'वचिस्वपि–यजादीनां किति' सूत्र में और ग्रह आदि 'ग्रहिज्या–वयि–व्यधि–वष्टि–विचति, वश्चति–भज्जतीनां ङिति च' सूत्र में कहे गये हैं।

---

1. विपूर्वक नी धातु से शिक्षा देने तथा कर्ज चुकाना आदि अर्थों में सदा आत्मनैपद ई आता है।
2. यहाँ बताई हुई 'उभयपदी धातुओं में केवल श्रि धातु सेट है, शेष सभी अनिट् हैं।

इयाज–यज् धातु से लिट् में ति्, णल् द्वित्व, अभ्यासकार्य होने पर 'य यज् अ' इस अवस्था में अभ्यास के यकार को संप्रसारण करने पर अकार का 'संप्रसारणाच्च' से पूर्वरूप होगा। उपधावद्धि होकर 'इयाज' रूप बनता है।

वचि-स्वपि यजादीनां किति 6.1.15.

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सप्रसारणं स्यात् किति। ईजतुः, ईजु। इयजिथ, इयष्ठ। ईजे। यष्टा।

व्याख्याः वच् (बोलना), स्वप् (सोना) और यज् आदि धातुओं को संप्रसारण हो कित् प्रत्यय परे होने पर।

निम्नलिखित पद्य में यज् आदि धातुयें गिनाई गई हैं'[1]–

'यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वे्् व्ये् इत्यपि।

ह्वे्–वदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव।।

पर होने से यह संप्रसारण द्वित्व के पहले होता है, उसके बाद द्वित्व होता हैं यही नहीं, संप्रसारणनिमित्तक पूर्वरूप भी पहले होता है। अतएव कहा जाता है 'संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत्' अर्थात् संप्रसारण और तदाश्रय (पूर्वरूप आदि) कार्य बलवान् होता हैं।

ईजतुः– 'यज् अतुस्' इस अवस्था में द्वित्व से पहले संप्रसारण और

तदाश्रय पूर्वरूप कार्य हो जाते हैं। तब 'इज् अ' ऐसी स्थिति बन जाने पर 'इज्' को द्वित्व होता है। अभ्यासकार्य करने पर 'इ इज् अतुस्' यह स्थिति बनती है। सवर्णदीर्घ होकर 'ईजतु' रूप सिद्ध होता है।

इयजिथ, इयष्ठ–थल् में अनिट् अकारवान् होने से वैकल्पिक इट् होता है। इट् पक्ष में इयजिथ रूप बनता है। 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' से संप्रसारण होता है। इड्भाव पक्ष में जकार को 'व्रश्च भ्रस्ज–सज–मज–यज– राज–भ्राज–च्छ–शां –षाः से मूर्धन्य षकार होकर थकार को ष्टुत्व ठकार होता है। तब इयष्ठ रूप बनता है। 'व' और 'म' में क्रादिनियम से नित्य इट् होता है–

प्र० इयाज, ईजतुः1, ईजु, । म० इयजिथ–इयष्ठ, ईजथुः, ईज। उ० इयाज–इयज, ईजिव, ईजिम।

ईजिवहे, ईजिमहे।

यष्टा–लुट् में जकार को 'व्रश्च–'सूत्र से जकार को मूर्धन्य षकार होता है। तब 'यष स्यति' यह स्थिति बनती है।

षढोः कः सि 8.2.41.

यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट।

व्याख्याः षकार और ढकार को ककार हो सकार परे होने पर।

यक्ष्यति–'यष् स्यति' में सकार परे होने से षकार को ककार हो गया। तब ककार इण् से पर प्रत्यय स्य के सकार को मूर्धन्य षकार होकर दोनों को मिलकर क्ष हुआ। तब यक्ष्यति रूप सिद्ध हुआ। आत्मनेपद में–यक्ष्यते।

लोट्–यजतु, यजताम्। लङ्–अयजत्, अयजत। विधिलिङ्– यजेत्, यजेत्।

इज्यात्–आशीर्लिङ् परस्मैपद में 'किदाशिषि' से यासुट् के कित् होने से 'वचि–स्वपि–यजादीनां किति' से संप्रसारण होकर इज्यात् आदि रूप बनते हैं।

यक्षीष्ट–आत्मनेपद में सीयुट् होने पर कार को 'व्रश्भ्रस्ज–' से षकार और उसकी 'पढोः कः सि' से ककार होता है। तब क–प के संयोग से क्ष बनाकर उक्त रूप सिद्ध होता है।

प्र० यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन्। म० यक्षीष्ठाः, यक्षीयास्थाम्। यक्षीध्वम्। उ० यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि।

लुङ्–प्र० अयाक्षीत्, अयाष्टाम्, अयाक्षुः। म० अयाक्षीः, अयाष्टम्। उ० अयाक्षम्, अयाक्ष्व अयाक्ष्म।

---

1. ध्यान रहे–कित् लिट् में संप्रसारण द्वित्व से पहले होता है। आत्मनेपद के सारे प्रत्यय कित् होते हैं। अतः सब में संप्रसारण कार्य होगा और होगा भी द्वित्व से पहले–'संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्ये बलवत्–संप्रसारण और तदाश्रय कार्य बलवान् होता हे' इस वच नन से।

अयाक्षीत्– में लुङ्, अट्, तस्, तास, च्लि, सिच् वद्धि सकारलोप, जकार को षकार, उसकी ककार , सकार को मूर्धन्य षकार, ये कार्य होते हैं।

अयाष्टाम्–में लुङ्, अट्, तस्, ताम्, च्लि, सिच्, वद्धि, हलन्त लक्षण, वद्धि, इट, जकारको पकार, उसको ककार, सकार को मूर्धन्य षकार ये कार्य होते हैं।

इन दो के समान ही अन्य रूप सिद्ध होते हैं।

लङ् में–अयक्ष्यत्, अयक्ष्यत।

वह प्रापणे.

वहति, वहते। उवाह, ऊह्वथुः, ऊवहिथ।

व्याख्याः त्रहना, ले जाना।

लिट् के रूप यज् के समान बनते हैं। यह यजादि है, अतः संप्रसारण होता हे। णल्, थल् में 'लिट्यीयासस्योभयेषाम्' से अभ्यास को संप्रसारण होता है। अन्यत्र कित् होने से 'वचि स्वपि–यजादीनां किति' से द्वितव होने के पहले ही होता है।

उवहिथ–अनिट् अकारवान् होने से थल् में वैकल्पिक इट् होता है। इट् पक्ष में यह रूप बनता है।

इडभाव पक्ष में 'उवह्थ' के हकार को ढकार हो जाता है।

झपस्त-थोर्धोअधः 8.2.40.

झषः परयोस्तथोर्धः स्यात, न नु दधातेः

व्याख्याः झष् से परे तकार और थकार को धकार हो, पर जुहो– त्यादिगण की 'धा' धातु के अवयव झप् से पर को न हो।

लिट् के थल् परे होने पर इट् के अभाव पक्ष में स्थिति होती है उ वह्+थ। ह् को ढ् होने पर स्थिति हुई उवढ्+थ। अब प्रकृत सूत्र से थ् को ध् आदेश हुआ। तब स्थिति हुई उ वढ् + ध्। ध् को ष्टुत्व होकर स्थिति हुई उ वढ्+ढ।

अवोढ–'उवढ् थ' यहाँ झप् ढकार है, उससे परे थकार को धकार ही गया। तब 'उवढ् ध' यह स्थिति हुई। यहाँ ष्टुत्व से ध्कार की ढकार हो जाता है।

ढो ढे लोपः 8.3.112

लोपः स्यात् ढे परे।

व्याख्याः ढकार परे रहते ढकार का लोप हो।

'उ वढ् + ढ' में ढ का लोप होकर स्थिति हुई।

'उ व + ढ'

सहि-वहोरोद् अवर्णस्य 6.3.13.

अनयोरवर्णस्य ओत् स्यात् ढ्लोपे। उवोढ। ऊहे। वीढ़ा अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः। अवोढ, अवाक्षाताम्, अवाक्षत, अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ। अवोढाः, अवाक्षाथाम्, अवोढ्वम।अवाक्षम्, अवाक्ष्व, अवाक्ष्म। अवाक्षि, अवक्ष्वहि अवक्ष्महि। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

व्याख्याः सह और वह् धातु को ओकार आदेश हो जब ढ् का लोप हुआ हो।

उव + ढ में ढ् का लोप हुआ है। अतः अन्तिम वर्ण अ को ओ आदेशहोकर उवोढ रूप बना।

वह धातु के शेष रूपों में कोई नया सूत्र नहीं लगता

भ्वादिगण समाप्त